A CRITICAL STUDY OF MORAL AND RELIGIOUS EXPERIENCE AS BASIS FOR GOD'S EXISTENCE

ईश्वर के अस्तित्व के आधार के रूप में नैतिक एवं धार्मिक अनुभव का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
की
डी० फिल्० (दर्शनशास्त्र) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध
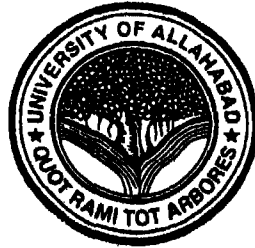
निर्देशक

श्री एस० के० सेठ
भूतपूर्व रीडर
दर्शनशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्ता

सुरेन्द्र प्रताप सिंह

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2003

समर्पण

आचार्य सन्तशिरोमणि

प्रेमावतार ब्रह्मनिष्ठ

अनन्तश्री विभूषित

श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज जी

(श्री रामहर्षण कुँज, अयोध्या)

के

पावन चरणो

मे

सादर

समर्पित ।

Certificate

This is to certify that the matter embodied in this thesis entitled "***A Critical Study of Moral & Religious Experience as a Basis for God's Existence***" *is a record of bonafied research work carried out by* **Mr Surendra Pratap Singh** *under my supervision and guidance. His examiner's have been appointed. He has completed all the requirements for submitting the thesis for the award of the Degree of Doctor of Philosophy of the University of Allahabad.*

Dated 02-06-2003

SKSeth

(Dr. S. K. Seth)
Supervisor
Department of Philosophy
University of Allahabad
Allahabad-211002

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का विषय है–'ईश्वर के अस्तित्व के आधार के रूप मे नैतिक एव धार्मिक अनुभव का आलोचनात्मक अध्ययन।" ईश्वर जैसे गम्भीर विषय पर विचार करना अत्यन्त दुरूह कार्य होते हुए भी उस अनन्त, असीम, महासागर को स्पर्श करने का एक अत्यल्प प्रयास अपनी छुद्र बुद्धि द्वारा किया गया है। सदियो से पाश्चात्य एव पौर्वास्त्य विचारको द्वारा इस विषय पर अनेक तरह से विचार किया गया है, लेकिन अनन्त, असीम ईश्वर का स्पष्ट एव प्रामाणिक ज्ञान तर्कों द्वारा स्थापित नही किया जा सका है। ईश्वर के अस्तित्व की स्थापना के लिए दिये गये परम्परागत सैद्धान्तिक प्रमाण इस कार्य मे पूर्णतया सफल नही हो सके है। इसीलिए मैने इन परम्परागत प्रमाणो की प्रमुख कमियो को स्पष्ट करते हुए ईश्वर के अस्तित्व के आधार के रूप मे नैतिक एव धार्मिक अनुभवो पर आधारित युक्तियो की विशिष्टता की स्वीकार किया है।

सम्पूर्ण विषय को ठीक ढग से स्पष्ट करने के लिए मैने उसे पाच अध्यायो मे विभाजित किया है। इसके प्रथम अध्याय **ईश्वर की अवधारणा** मे मैने ईश्वर के अस्तित्व के लिए परम्परागत प्रमाणो एव नैतिक तथा धार्मिक अनुभवो पर आधारित युक्तियो की विवेचना करने के पूर्व उस ईश्वर की अवधारणा के बारे मे जानने का प्रयास किया है कि वह ईश्वर क्या है? जिसके अस्तित्व को प्रमाणित करने का हम प्रयास करना चाहते है।

द्वितीय अध्याय **ईश्वर के अस्तित्व के लिए परम्परागत सैद्धान्तिक तर्क** के अन्तर्गत तीन प्रकार के परम्परागत सैद्धान्तिक प्रमाणो–सत्तामूलक, विश्वमूलक एव प्रयोजनमूलक का परीक्षण किया गया है।

तृतीय अध्याय **ईश्वर के अस्तित्व के लिए नैतिक युक्तियाँ** के अन्तर्गत नैतिक अनुभवो पर आधारित युक्तियो के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। इसके अन्तर्गत काट, न्यूमैन, रैशडल, विलियम रिची सोर्ले एव ए०ई० टेलर आदि विचारको के तर्कों का परीक्षण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय **धार्मिक अनुभव एव ईश्वर का अस्तित्व** के अन्तर्गत ईश्वर से सम्बन्धित विविध धार्मिक अनुभवो के आधार पर दी गई युक्तियो से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

पचम अध्याय **उपसहार** के अन्तर्गत ईश्वर के अस्तित्व के लिए दिये गये परम्परागत प्रमाणो से नैतिक एव धार्मिक अनुभवो की विशिष्टता को स्वीकार करते हुए यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि युक्तियाँ चाहे परम्परागत हो या नैतिक एव धार्मिक अनुभवो पर आधारित हो, वे पूर्णतया सफल नही है। फिर भी अनुभूतियो का सहगामी बनाना हमारा अभीष्ट हो सकता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को यह आकार देने मे अनेक विशिष्ट महानुभावो के द्वारा मेरा मार्गदर्शन हुआ है जिनके प्रति मै आजीवन कृतज्ञ एव आभारी हूँ।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि परमश्रद्धेय गुरुवर श्री एस०के० सेठ, भूतपूर्व रीडर दर्शनशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के निर्देशन मे यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हुआ। उन्होने अपना अमूल्य समय एव निर्देशन प्रदान कर इस दुरूह विषय को सुगम बनाने मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान किया, जिसके लिए मै हमेशा कृतज्ञ एव आभारी हूँ।

परम श्रद्धेय गुरुवर डॉ० जटाशकर त्रिपाठी, रीडर, दर्शनशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद का इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता मे विशेष योगदान रहा। आपके द्वारा कठिन विषयो को समझने मे सहायता मिली, जिसके लिए मै आजीवन कृतज्ञ हूँ।

दर्शनशास्त्र विभाग के सभी गुरूजनो का मै हृदय से आभारी हूँ जिनके ज्ञानसिन्धु के बिन्दुकणो का आश्रय पाकर मै धन्य हुआ हूँ। मै गुरूदेव प्रो० सगमलाल पाण्डेय, डॉ० देवकी नन्दन द्विवेदी, डॉ० जगदीश सहाय श्रीवास्तव, (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, इ०वि०वि०, इलाहाबाद) एव डॉ० मृदुला रवि प्रकाश (विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) तथा रीडर, डॉ० नरेन्द्र सिह, डॉ० हरिशकर उपाध्याय, डॉ० गौरीचट्टोपाध्याय एव डॉ० आशालाल का आभार प्रदर्शन करना चाहता हूँ जिनके सहयोग एव आशीर्वाद के बिना दर्शनशास्त्र जैसे गूढ विषय का किञ्चित ज्ञान प्राप्त करना दु साध्य होता।

मेरे जीवन मे कुछ ऐसे महापुरुषो का भी दिव्य अवतरण हुआ है जिनके चरणो की बार–बार वन्दना करता हूँ। रामानन्द सम्प्रदाय के वैष्णव सन्त मेरे मन्त्र प्रदाता गुरुदेव अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री रामहर्षणदास जी महाराज, के पावन चरणो की वन्दना करता हूँ। आपकी परम अहैतुकी कृपा के परिणामस्वरूप ही यह शोध–कार्य सम्भव हो सका है।

जिनके बिना मेरा कोई अस्तित्व ही नही है ऐसे परमपूज्यनीय पिताजी श्री इन्द्रबली सिह एव ममतामयी माताजी श्रीमती सोनापति सिह की गोद मे बैठकर प्रेम, शान्ति एव आनन्द प्राप्त करने को सतत् लालायित हूँ, जिन्होने विषम परिस्थितियो
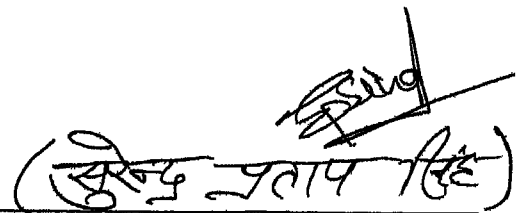
का सामना करते हुए हर तरह से मेरी रक्षा की है। परमपूज्यनीय बाबा स्वर्गीय श्री जगतधारी सिह को बार–बार नमन करता हूँ।

पत्नी श्रीमती पूनमसिह का भी आभारी हूँ जिन्होने हर कदम पर मुझे सहयोग प्रदान कर शोध–प्रबन्ध की पूर्णता मे सहायता की।

गुरुदेव श्री गुलाबदास मिश्र, उपप्रधानाचार्य, गो०तु०इ० कालेज कोरॉव, इलाहाबाद जिन्होने इन्टर स्तर पर मुझे हिन्दी विषय पढाया एव आध्यात्मिक अनुभूति का एक सूत्र प्रदान किया, जो शोध–प्रबन्ध लिखने का प्रेरणास्रोत है, के प्रति आभार प्रदर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

अपने अग्रज डॉ० श्याम कान्त त्रिपाठी, डॉ० उत्तम सिह, डॉ० अनिल कुमार सिह भदौरिया, डॉ० विद्यासागर उपाध्याय एव श्री प्रमोद कुमार सिह (दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) डॉ० रोमहर्षण गुप्त, (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) एव मित्रगण श्री अरविन्द कुमार त्रिपाठी, श्री श्याम सुन्दर केशरी, श्री शैलेन्द्र कुमार सिह, श्री अरुण प्रताप सिह, डॉ० अनिल कुमार सिह, श्रीमती हर्षलता सिह, कु० बबिता सिह, आदि द्वारा उत्साहवर्धन शोध–प्रबन्ध की पूर्णता का आवश्यक अग है। आप सबके प्रति मै सतत् आभारी हूँ।

अन्त मे मै ***जय दुर्गे मॉ कम्प्यूटर प्वाइट, मनमाहेन पार्क, कटरा, इलाहाबाद*** का विशेष आभार प्रदर्शित करता चाहता हूँ जिन्होने (सर्वश्री रतन खरे, रमेश यादव, सतोष दास, चन्द्रभान सिह, राम कुमार त्रिपाठी, धीरज मिश्रा) अल्प समय मे इस कार्य को पूर्ण करने मे सहयोग किया।

(सुरेन्द्र प्रताप सिंह)

अनुक्रमणिका

अध्याय-एक

ईश्वर की अवधारणा

अध्याय–एक

ईश्वर की अवधारणा

इस शोध–प्रबध के प्रथम अध्याय मे ईश्वर की अवधारणा पर विचार कर लेना उचित होगा। ईश्वर की सत्ता मे विश्वास अधिकाश धर्मों का अग रहा है। धर्म के क्रियात्मक एव भावनात्मक पक्ष इसी विश्वास से सार्थकता प्राप्त करते है। इसीलिए इस विश्वास की सत्यता सिद्ध करने के लिए परम्परा से अनेक युक्तियॉ प्रतिपादित की गई है। लेकिन इन युक्तियो की परीक्षा करने के पहले हमे उस ईश्वर की अवधारणा के बारे मे स्पष्ट हो जाना चाहिए जिसकी सत्ता ये युक्तियॉ सिद्ध करने का प्रयत्न करती है।

ईश्वर से सम्बन्धित मुख्यतया चार प्रकार के दृष्टिकोण हमारे समक्ष है। इनमे प्रथम दृष्टिकोण ***नास्तिको या अनीश्वरवादियो*** का है, जिन्होने ईश्वर की सत्ता का खण्डन किया है। दूसरा दृष्टिकोण ***सन्देहवादियो अथवा अज्ञेयवादियो*** का है। तीसरा दृष्टिकोण ***आधुनिक काल के ऐसे विचारको*** का है, जिन्होने ईश्वर सम्बन्धी प्रश्न की सार्थकता पर ही सन्देह किया है, और चौथा वर्ग उन ***आस्तिक विचारको*** का है जो ईश्वर शब्द को सार्थक मानते हुए ईश्वर की सत्ता मे विश्वास करते है।

अब हम थोडा विस्तृत रूप से इन दृष्टिकोणो पर विचार करते हुए ईश्वर की अवधारणा को जानने का प्रयास करेगे।

प्रथम दृष्टिकोण अनीश्वरवाद ईश्वर मे विश्वास का विरोधी है। सामान्यत धर्म ईश्वर के अस्तित्व पर ही आधारित होते है,

किन्तु उसके कुछ अपवाद है। भारत मे जैन व बौद्ध धर्मो को नास्तिक धर्म कहा जाता है, जो ईश्वर की सत्ता मे विश्वास न करते हुए भी धर्म कहे जाते है। अनीश्वरवादियो ने ईश्वर की सत्ता मे विश्वास न करने के पक्ष मे कुछ तर्को का भी सहारा लिया है। उनका प्रथम तर्क यह है कि चूँकि आज तक किसी भी प्रमाण के द्वारा ईश्वर की सत्ता को वैध ढग से सिद्ध नही किया जा सका है, इसलिए ईश्वर का अस्तित्व नही है। इन प्रमाणो का परीक्षण आगे के अध्यायो मे किया गया है। दूसरे तर्क के रूप मे अनीश्वरवादियो या नास्तिको ने अशुभ की समस्या के द्वारा भी ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन किया है। उनका तर्क है कि यदि ईश्वर है, जैसा कि आस्तिको का विश्वास है, और वह सर्वशक्तिमान एव शुभ है तो ससार मे अशुभ का अस्तित्व क्यो है? अशुभ से आशय प्राकृतिक एव नैतिक अशुभ से है जिनमे अनेक सासारिक आपदाए, बाढ, भूकम्प, महामारी, चोरी, भ्रष्ट्राचार, आतक, हत्या, झूठ आदि बुराइयो को लिया जा सकता है। यदि ईश्वर होता और वह सर्वशक्तिमान एव शुभ होता तो अशुभ की समस्या न होती। चूँकि ससार मे सर्वत्र अशुभ कई रूपो मे दृष्टिगोचर है, इसलिए ईश्वर नामक कोई सत्ता नही है। अनीश्वरवादियो ने अगले तर्क के रूप मे ईश्वर मे अविश्वास करने का कारण यह भी बतलाया है कि चूँकि ससार की हर वस्तु की व्याख्या प्राकृतिक एव वैज्ञानिक ढग से की जा सकती है, जिसमे ईश्वर की कोई आवश्यकता नही है, अत ईश्वर नही है।

ईश्वर से सम्बन्धित दूसरा दृष्टिकोण ***संदेहवादी अथवा अज्ञयेवादी*** है। सदेहवादी या अज्ञेयवादी प्रवृत्ति सभी देशो व युगो

मे दिखलाई पडती है। सदेहवाद का एक विकसित रूप ह्यूम के दर्शन मे मिलता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार ईश्वर से सम्बन्धित कोई ज्ञान सम्भव नही है।

अत इनके अस्तित्व का समर्थन अथवा खण्डन मानवबुद्धि की क्षमता से बाहर है। युक्तियाँ चाहे ईश्वर के अस्तित्व के लिए हो या अनस्तित्व के लिए, वे सभी अवैध हैं।

ईश्वर से सम्बन्धित ***तीसरा दृष्टिकोण*** आधुनिक काल के कुछ ऐसे बुद्धिजीवियो का है जिन्होने ईश्वर सम्बन्धी प्रश्न की सार्थकता पर ही सन्देह किया है। इनका कहना है कि कोई भी कथन तभी अर्थपूर्ण होता है जबकि हम ऐसी स्थिति का वर्णन कर सके जिसमे इस कथन की सत्यता की परीक्षा प्रत्यक्ष अनुभव से की जा सके। ईश्वर सम्बन्धी वाक्यो के बारे मे ऐसा वर्णन सम्भव नही है, इसलिए वे अर्थहीन है। ऐसी स्थिति मे उनकी सत्यता या असत्यता का प्रश्न ही नही उठ सकता। ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी ही नही, सन्देहवादी भी गलत है। जिस प्रकार एक अर्थहीन वाक्य "मेज पर रमट है" के समर्थन या खण्डन के साथ–साथ उस पर सशय करना भी बेमानी है, वैसे ही 'ईश्वर है" के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता है। अर्थहीनता की शिकायत इसीलिए है कि इन विचारको के अनुसार हमारा कोई प्रत्यक्ष अनुभव न तो ईश्वर की सत्ता की पुष्टि करता है और न ही इसका खण्डन।

"अर्थ" का उपर्युक्त सिद्धान्त सही है या नही, यह एक लम्बी दार्शनिक बहस का विषय है, उसमे पडना हमारा अभीष्ट नही है लेकिन इतना स्पष्ट है कि इन विचारको ने 'प्रत्यक्ष

अनुभव' को एक अत्यन्त सकीर्ण अर्थ मे लिया है। हो सकता है कि हमारे साधारण अनुभवो के द्वारा ईश्वर' शब्द को कोई अर्थ न मिलता हो, न ही उनके द्वारा उसकी सत्ता या आरोपित गुणो पर प्रकाश पडता हो, लेकिन इससे निर्णायक रूप से कुछ भी निष्कर्ष नही निकाला जा सकता।

ईश्वर के सम्बन्ध मे ***चौथा दृष्टिकोण आस्तिक विचारकों*** का है, जो ईश्वर शब्द को सार्थक मानते हुए ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास करते है, एव अपने विश्वास के पक्ष मे अनेक युक्तियो का प्रतिपादन करते है। इस दृष्टिकोण मे ईश्वर से सम्बन्धित मुख्यत तीन प्रकार के विचारो का उल्लेख किया जा सकता है।

(1) तटस्थ ईश्वरवाद (Deism)

(2) सर्वेश्वरवाद (Pantheism) एव

(3) ईश्वरवाद (Theism)

तटस्थेश्वर (Deism) के अनुसार बहुत पहले ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण किया और उसे गति प्रदान करने के बाद अकेला छोड दिया। इसने एक 'अनुपस्थित ईश्वर' (Absentee God) के विश्वास को जन्म दिया। इसके (Deism) नही रहेगा अन्तर्गत मुख्यतया दो तत्त्वो का समावेश है–

पहला ईश्वर मे विश्वास जिसने सृष्टि की रचना की है और दूसरा उसके सृष्टि की स्वतत्र स्थिति। ईश्वर विश्व की किसी भी क्रिया मे हस्तक्षेप नही करता। जहॉ तक ज्ञात है "Deist" शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पायरे वायरेट (Pierre Viret) ने किया था। इग्लैड मे मार्गन और फ्रास मे वाल्टेयर इस

विचारधारा के प्रमुख प्रतिनिधि हुए। तटस्थईश्वरवाद परम्परागत धर्मशास्त्र के विरूद्ध जाता है क्योकि उसके अनुसार ईश्वर को प्रसन्न' करके सुख प्राप्त करने की आशा निराधार है। ईश्वर न तो मानव के दुख से विचलित होता है न मानव की प्रार्थना से क्रियाशील बनता है।

लेकिन इस प्रवृत्ति का एक आशावादी पक्ष भी है। जब ईश्वर हस्तक्षेप करता ही नही, तब मानव को स्वय अपने जीवन को बेहतर बनाना है उसकी उन्नति, अवनति उसके अपने ही हाथ मे है। इस तरह 'डीइज्म' मे आधुनिक मानवतावाद के सकेत मिलते है। पायरेवायरेट के अनुसार एक डीस्ट (Deist) ईश्वर को स्वर्ग और पृथ्वी के स्रष्टा के रूप मे विश्वास करता है परन्तु वह ईसामसीह एव उनके सिद्धान्तो मे विश्वास नही करता। डा० सैमुअल जॉनसन ने अपनी ''डिक्शनरी (1755)'' मे '''डीस्ट' शब्द को परिभाषित करते हुए बतलाया है कि— "a man who follows no particular religion but only acknowledges the existence of god, without any other article of faith"

आस्तिक विचारको का दूसरा रूप हमे ***सर्वेश्वरवाद*** (Pantheism) के रूप मे मिलता है। इस मत के अनुसार ईश्वर ससार की प्रत्येक वस्तु मे व्याप्त है या ईश्वर और ससार अभिन्न है। सर्वेश्वरवाद विशुद्ध 'एकवाद' है क्योकि वह ईश्वर से स्वतन्त्र किसी सत्ता को नही मानता। यह धारणा बहुत दिनो तक प्रचलित थी कि सर्वेश्वरवाद एक विशेष रूप से पौर्वास्त्य विचारधारा है और पाश्चात्य सास्कृतिक वातावरण मे नही पनपती। लेकिन पाश्चात्य दार्शनिक परम्परा मे भी सर्वेश्वरवादी प्रवृत्ति कई बार उभरी है। पार्मेनाइडीज के 'सत', प्लेटो के

उच्चतम प्रत्यय और प्लॉटिनस के एक' मे सैद्धान्तिक दृष्टि से सर्वेश्वरवाद की मूल मान्यता विद्यमान है, चाहे उन्होने सर्वव्यापी सत्ता को ईश्वर का नाम न दिया हो। मध्ययुगीन रहस्यवादी सन्तो का झुकाव स्पष्ट रूप से सर्वेश्वरवाद की ओर था।

आधुनिक समय मे स्पिनोजा सर्वेश्वरवाद का प्रतिनिधि है। उसका निर्गुण द्रव्य, जो आत्मिक एव पार्थिव गुणो का अधिष्ठान है, सर्वेश्वरवाद की मॉगे पूरी करता है।

दर्शन के अलावा आधुनिक यूरोपीय साहित्य मे भी सर्वेश्वरवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हर्डर, लेसिग, गेटे और वर्ड्सवर्थ की रचनाओ मे सर्वेश्वरवादी दार्शनिक भूमिका काव्यात्मक रूप से व्यक्त हुई है।

सर्वेश्वरवाद मे प्रार्थना या पूजा के लिए कोई स्थान नही है। यह धर्म के ईश्वर से भिन्न है।

सर्वेश्वरवाद से ही कुछ मिलता–जुलता सिद्धान्त गीता मे एव शकराचार्य के दर्शन मे देखने को मिलता है लेकिन यह पूर्णत सर्वेश्वरवाद न होकर परसर्वेश्वरवाद (Panentheism) का रूप है। गीता मे इसका उदाहरण है–

बहूनामजन्मनामन्ते ज्ञानवान्माप्रपद्यते।

वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ।। 7/19

सर्वेश्वरवाद की कुछ प्रमुख कठिनाइयॉ इस प्रकार है–इस सिद्धान्त की प्रथम कठिनाई यह है कि इसमे ईश्वरोपासना के लिए कोई स्थान नही है। उपासना के लिए ईश्वर तथा भक्त मे

भेद का होना अनिवार्य है, किंतु सर्वेश्वरवाद इन दोनो के भेद को ही समाप्त कर देता है।

सर्वेश्वरवाद की दूसरी कठिनाई यह है कि यह सिद्धान्त मानवीय सकल्प स्वातन्त्र्य और नैतिक मूल्यो का निषेध करता है। यदि ईश्वर ही सब कुछ है और सब कुछ ईश्वर है तो मनुष्य के सकल्प की स्वतन्त्रता, शुभ–अशुभ के भेद तथा नैतिक मूल्यो के महत्व की बात करना निरर्थक हो जाता है। वस्तुत ये सब तभी सार्थक और महत्वपूर्ण हो सकते है जब मानव ईश्वर का अभिन्न अग न होकर उससे कुछ सीमा तक भिन्न तथा स्वतन्त्र हो।

ईश्वर के सम्बन्ध मे आस्तिक दृष्टिकोण का तीसरा प्रमुख रूप "ईश्वरवाद" (Theısm) है। यह दृढतापूर्वक ईश्वर मे विश्वास करता है। ईश्वरवाद उस ईश्वर मे विश्वास करता है जो वैयक्तिक है, सृष्टिकर्त्ता (desıgner) है, तथा विश्व की वस्तुओ मे उपस्थित भी है। कुछ ईश्वरवादी इस वैयक्तिक सत्ता को परमसत्ता मानते है। यह परमसत्ता हीगले एव ब्रेडले के निरपेक्ष सत्ता से भिन्न है, क्योकि उनकी निरपेक्षसत्ता व्यक्तित्वरहित और शुद्ध बौद्धिक है जबकि ईश्वरवादियो का परमसत् मानव प्राणियो से व्यक्तिगत सम्बन्धो से जुडा रहता है।

ईश्वरवादी मान्यतानुसार ईश्वर विश्व से एव प्राणियो के शुभ–अशुभ कार्यो से लगाव रखता है, और उपासको को सन्तुष्टि प्रदान करता है। जबकि तटस्थ ईश्वरवाद (Deısm) के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि का केवल निर्माण किया है और उसके बाद उसे निश्चित नियमो के अनुसार चलते रहने के लिए अकेला छोड दिया है। ईश्वरवाद को तर्कबुद्धि, आस्था, चमत्कार एव नैतिक

और धार्मिक अनुभवो आदि आधारो पर स्थापित किया गया है। ईश्वरवाद साधारणतया दो रूपो मे पाया जाता है—पहला बहुदेववाद (Polytheism) दूसरा एकेश्वरवाद (Monotheism)। बहुदेववाद बहुत से देवताओ मे विश्वास करता है। आदिम लोग विशेष रूप से ग्रीक, रोम और भारत मे बहुदेववादी अवधारणा मे विश्वास किया जाता था। इन देवताओ मे अग्नि, सूर्य इन्द्र, वरूण, आदि है। आदिम अवधारणा मे ईश्वर से सम्बन्धित कई विचार मिलते है।

कुछ धर्म ईश्वर को सीमित बुद्धि का मानते थे, जबकि कुछ असीमित बुद्धि से युक्त ईश्वर की सत्ता मे विश्वास करते थे। कुछ प्राचीन ग्रीक ईश्वर सीमित बुद्धि से युक्त है, जबकि ईसाई का ईश्वर असीम बुद्धि से युक्त है। कुछ धर्मों मे ईश्वर को केवल चेतना न मानकर भौतिक शरीर युक्त माना गया है, जैसे *ज्यूस* (Zeus) *ओलम्पस* एव हिन्दू धर्म मे *राम, कृष्ण* आदि। जबकि कुछ अन्य धर्मों मे ईश्वर को केवल चेतना माना गया है। ईश्वर को एक निश्चित शक्ति से युक्त भी माना गया है। यह आवश्यक नही है कि ईश्वर की शक्ति ईसाई मान्यता की तरह असीमित ही हो अपितु इसे मानवीय शक्ति से अधिक निश्चित रूप से होना चाहिए। कुछ आदिम जातियो मे ऐसे ईश्वर की कल्पना की गई है जो मानव बलि चाहता है, जो क्रोधित होने पर पूरे समाज को विनष्ट कर देता है और जो अपने विरोधियो से बदला लेता है।

बहुदेववाद एव उपरोक्त ईश्वर से सम्बन्धित विविध अवधारणओ के बाद लोगो ने एक ही ईश्वर मे विश्वास करना प्रारम्भ किया, इसे एकेश्वरवाद (Monotheism) कहा जाता है।

इस मान्यता के अनुसार केवल एक परम सत्ता हे जिसमे अनेक गुण है, जैसे—सृष्टिकर्ता, असीमितता, स्वत अस्तित्ववान होना, सर्वशक्तिमत्ता सर्वज्ञता, परोपकारिता, शुभत्व, पवित्रता, व्यक्तित्वपूर्णता, प्रेमी आदि । ईश्वर की यह अवधारणा आज के विकसित धर्मों यहूदी, ईसाई, इस्लाम, शैव एव वैष्णव आदि मे पाई जाती है। ईश्वर की इसी अवधारणा को हम नैतिक एकेश्वरवाद (Etheical Monotheism) की सज्ञा देते है जिसमे व्यक्ति का नैतिक उत्तरदायित्व एव सकल्प स्वातन्त्रय सुरक्षित रहता है।

ईश्वर के सम्बन्ध मे उपरोक्त चारो दृष्टिकोणो के विवेचन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ईश्वर की अवधारणा का मूलभूत गुण यह है कि ईश्वर सृष्टि का निर्माता है अथवा कम से कम विश्व के कुछ गुणो का निर्माता है। कम से कम यह तत्व ईश्वर की अवधारणा मे अवश्य ही समाहित होना चाहिए। अत हम अपने शोध—प्रबन्ध मे उसी ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न करेगे जिस ईश्वर को आज के विकसित धर्मों मे स्वीकार किया जाता है, जिनमे कुछ अन्तर होते हुए भी काफी समानता है। हम यहाँ उस ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न नही कर है जिसे तटस्थेश्वरवादी, सर्वेश्वरवादी (Patheism), बहुदेववादी एव आदिम धर्मों को मानने वाले स्वीकार करते है।

अब चूँकि मेरा शोध—प्रबन्ध मुख्यत नैतिक एकेश्वरवादी ईश्वर की अवधारणा पर केन्द्रित है इसलिए इसका विस्तृत विवेचन अपेक्षित है। लेकिन इसके पूर्व मै यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि नैतिक एकेश्वरवादी (Ethcical Monotheism)

ईश्वर की अवधारणा को ही क्यो लिया गया है—इसके दो कारण है —

पहला यह कि ईश्वर की नैतिक एकेश्वरवादी अवधारणा ससार के विकसित धर्मों मे पाई जाती है। प्राचीन धर्मों अथवा आदिम समाजो मे मनुष्य बहुत से देवताओ मे विश्वास करता था उसके पास आज की तरह ईश्वर की एकेश्वरवादी अवधारणा का अभाव था। लेकिन बाद मे वह एक ईश्वर मे विश्वास करने लगा जो सृष्टिकर्त्ता (Creater), निर्माता (Designer) परोपकारी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आदि है।

ईश्वर की नैतिक एकेश्वरवादी अवधारणा को स्वीकार करने का दूसरा कारण यह है कि दार्शनिको एव धर्मशास्त्रियो ने इसी नैतिक एकेश्वरवादी अवधारणा के ही पक्ष एव विपक्ष मे अपने तर्कों को प्रस्तुत किया है। नास्तिको ने नैतिक एकेश्वरवाद की अवधारणा का ही वस्तुत खण्डन किया है।

अत अब यह विचारणीय है कि ईश्वर की नैतिक एकेश्वरवादी अवधारणा क्या है जो यहूदी, ईसाई, इस्लाम, शैव एव वैष्णव धर्मों मे वर्णित है। हम इसी ईश्वर की अवधारणा को ग्रहण करते हुए इसके अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न आगे के अध्यायो मे करेगे। इस नैतिक एकेश्वरवादी ईश्वर की कुछ प्रमुख विशेषताए इस प्रकार है—

ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है

जब यह कहा जाता है कि ईश्वर सृष्टिकर्ता है तो इस का आशय यह है कि वह समस्त सृष्टि का रचयिता है, न कि केवल विश्व का। वह स्वय के अतिरिक्त समस्त वस्तुओ का रचयिता

है। साधारणतया रचयिता से आशय होता है, जो पहले से उपस्थित पदार्थों को नया रूप देता है, लेकिन जब यह रचयिता शब्द ईश्वर के सम्बन्ध मे प्रयोग किया जाता है तो इसका आशय है शून्य से सृष्टि। यदि सृष्टि न रहे तो केवल ईश्वर रहेगा। जब यह कहा जाता है कि ईश्वर उपरोक्त अर्थ मे सृष्टिकर्त्ता है तो इसके दो अर्थ है—

पहला यह कि किसी प्राणी का सृष्टिकर्त्ता होना असम्भव है। सृष्ट प्राणी केवल उपलब्ध पदार्थों को आकार प्रदान कर सकता है, लेकिन वह शून्य से किसी वस्तु की रचना नही कर सकता। जबकि केवल ईश्वर शून्य से सृष्टि का निर्माण कर सकता है। इसीलिए इस धरातल पर ईश्वर और उसकी सृष्टि मे बहुत अन्तर है—सृष्ट—सृष्ट बना रहता है और सृष्टिकर्त्ता—सृष्टिकर्त्ता बना रहता है।

दूसरा यह कि सृष्ट सत्ता निरपेक्ष रूप से ईश्वर पर आधारित होती है जो उसका निर्माता है और उसके सतत् अस्तित्व का आधार है।

लेकिन यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर ने विश्व की रचना किसी समय मे की अथवा नही? सन्त आगस्टाइन का उत्तर नकारात्मक[1] है। उन्होने माना कि समय स्वय सृष्टि का एक भाग है। जॉन हिक के अनुसार, "more fruitful approach is suggested by Augustine's, thought that the creation did not take place in time but that time is itself an aspect of the

1 फिलाशॉफी ऑफ रिलिजन पृ०—9।

created world[2]" ईश्वर से सृष्टि होना उसका स्वभाव है। ईश्वर नित्य सत्ता है, अत सृष्टि भी सहज ढग से नित्य है। यह नही कहा जा सकता है कि विश्व का प्रारम्भ समय के अन्तर्गत हुआ है। लेकिन जॉनहिक के अनुसार—"Thomas Aquinas (1224/5-1274) held that the idea of creation does not necessarily rule out the possibility that the created universe may be eternal It is, he thought, conceivable that God has been creative from all eternity, so that although his universe has created and dependent status, it is ***never-the-less*** without a beginning He also said, however, that although the concept of creation does not in itself imply a beginning, Christion revelation asserts a beginning and on this ground he rejected the idea of an enternal creation "[3]

ईश्वर स्वत अस्तित्ववान (Self-existent) है। इसमे दो तत्व निहित है—

प्रथम यह कि ईश्वर अनादि एव अनन्त है। यदि इसका प्रारम्भ माना जाय तो एक पूर्व सत्ता का अस्तित्व मानना पडेगा जो ईश्वर को सत्ता रूप मे लाती है और जो ईश्वर पर अपना प्रभाव डालने मे समर्थ होगी। दूसरा यह कि ईश्वर अपने अस्तित्व के लिए अपने से भिन्न किसी अन्य सत्ता पर आधारित नही है। उसके बाहर कुछ नही है। उसे कोई स्थापित या नष्ट नही कर सकता। वह स्वत अस्तित्ववान है। ***पॉलतिलिख*** कहते है कि हमे यह नही कहना चाहिए कि ईश्वर अस्तित्ववान है,

2 Confessions Book-II Chapter 13 City of God Book-II Chapter-6 this reference in the Hick's Philosophy of Religion
3 Summa Theologica I 19 46 2 This reference is in Hick's 'philosophy of Religion'

क्योकि यह 'अस्तित्व' शब्द केवल सासारिक लोगो के लिए लागू होता है, जो सीमित है। वे कहते है "Thus the question of the existence of God can be neither askd nor answered If asked, it is a question about that which by its very nature is above existence, and therefore, the answer-negative or affirmative implicitly denies the nature of God, it is as atheistic to affirm the existence of God as it is to deny it God is being-itself, not a being [1]

जॉनहिक अपनी 'Philosophy of Religion' मे पॉल लिलिख के विचार की व्याख्या इस प्रकार करते है—"This paradox, as it must sound in the mouth of a theologian, that " God does not exist" is not as startling as it may at first appear It operates as a vivid repudiation of every form of belief in a finite deity Tillich means, not that the term "God" does not refer to any reality, but that the reality to which it refers is not merely one among others, not even the first or the highest, but rather the very source and ground of all being Tillich is, in effect, urging a restriction of the term 'exist' to the finite and created realm, thereby rendering it improper to ask of the infinite creator whether he exists, or to affirm or deny his existence But it is only on the basis of this restricted usage that Tillich repudiates the statement that God exists He is emphasizing the point which was familiar to the medieval

---

1 Paul Tillich-'Systematic Theology', I P 237

scholastics, that the creator and the created can not be said to exist precisely the same sense[1] "

ईश्वर शुभ (Good) है, लेकिन जब यह कहा जाता है कि ईश्वर शुभ है, तो कुछ प्रश्न उठते है। जब हम कहते है कि ईश्वर शुभ है तो इसका तात्पर्य यह है कि हमारे पास एक पैमाना है जिससे हम यह निश्चित करते है कि ईश्वर शुभ है। और फिर यह दिखाता है कि यहाँ ईश्वर से अलग दूसरी सत्ता है तब ईश्वर परमसत् नही है। धर्मशास्त्री इस समस्या के समाधान का प्रयास करते हैं। वे कहते है कि अस्तित्व के धरातल पर ईश्वर पहले है उसके बाद अन्य वस्तुए है, और पैमाना के रूप मे अर्थात् ज्ञान के रूप मे यह पैमाना पहले है फिर ईश्वर। पुन यदि ईश्वर शुभ है और वह विश्व का स्रष्टा है तो उसने विश्व मे अशुभ को स्थान क्यो दिया है। इस समस्या के समाधान के लिए भी धर्मशास्त्रियो द्वारा कई समाधान प्रस्तुत किये गये है जिनकी चर्चा आगे के बिन्दुओ मे की गई है।

जब यह कहा जाता है कि ईश्वर शुभ है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि मनुष्य का सर्वोच्च शुभ ईश्वर मे पाया जाता है। मनुष्य परमशुभ केवल ईश्वर मे पा सकता है। सर्वोच्च सत्ता की शुभता का आशय है कि सर्वोच्च सत्ता के सभी आदेश, इच्छा या कार्य नैतिक रूप से उचित होते है। वह हमेशा शुभ सवेगो से युक्त है। इस प्रकार 'ईश्वर शुभ है' का अर्थ है कि ईश्वर शुभ सवेगो एव कार्यो से युक्त है।

---

1 Paul Tillich-'Systematic Theology' P-7

ईश्वर व्यक्तित्त्वपूर्ण है

अनेक ईश्वरवादी दार्शनिक ईश्वर को निर्गुण, एव निराकार न मान कर सगुण और व्यक्तित्व सम्पन्न मानते है। वे ईश्वर की कल्पना विशेष प्रकार के व्यक्तित्व से सम्पन्न एक ऐसे महापुरूष के रूप मे करते है जो जगत् का रचयिता, पालनकर्त्ता एव सहारक है और जिसमे समस्त सद्गुण असीमित मात्रा मे विद्यमान है। उनका मत है कि ऐसा व्यक्तित्व सम्पन्न ईश्वर ही भक्तो का उपास्य हो सकता है और उनकी प्रार्थना सुनकर उनके प्रति अपना अनुग्रह तथा स्नेह प्रदर्शित कर सकता है। ऐसे ईश्वर के साथ ही गहन आत्मीयता का अनुभव करते हुए भक्त उसके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर सकते है। ईश्वर की व्यक्तित्वपूर्णता का अर्थ स्पष्ट करते हुए ***ट्रब्लड*** कहते है कि –

"हमारा लक्ष्य ऐसे ईश्वर के अस्तित्व को सुनिश्चित करना है जिसके समक्ष हम अपने पापो को स्वीकार कर सके–ऐसा ईश्वर जो प्रेम करता है और जो हमारी जिज्ञासा तथा खोज से ऊपर नही है, जो परमतत्व न होकर–पिता है। पूर्णत व्यक्तित्व सम्पन्न ईश्वर के विचार का अर्थ यह है कि ईश्वर चेतना तथा आत्म–चेतना का केन्द्र है और इसी कारण वह केवल शक्ति तथा नियम के शासन से पूर्णतया भिन्न है, यद्यपि ईश्वर निश्चय ही शक्ति एव प्रकृतिक नियम दोनो का स्रोत है। ईश्वर कोई ऐसी वस्तु नही है जिसके विषय मे केवल बात ही की जा सके, वह ऐसी सत्ता है जिसके ***साथ*** बात की जा सकती है और जिसकी बात सुनी जा सकती है"[1]।

---

1 डेविड ऐल्टन ट्रब्लड 'फिलासॉफी रिलिजन पृ० 266–267।

जो ईश्वरवादी दार्शनिक ईश्वर को व्यक्तित्व सम्पन्न सत्ता के रूप मे स्वीकार करते है वे उसे अनिवार्यत समस्त नैतिक सद्गुणो प्रेम, शुभत्व करुणा, परोपकार, न्याय, उदारता, क्षमाशीलता आदि से परिपूर्ण मानते है।

ओल्डटेस्टामेट मे ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण शब्दो मे बात करता है। जैसे– "I am the God of your father, the God of Abraham, the God of Isacc, and the God of Jacob[1]"

परन्तु ईश्वर की व्यक्तित्वपूर्णता और उसके नैतिक गुणो के कारण अनेक दार्शनिक समस्याए उत्पन्न होती है। जो ईश्वरवादी दार्शनिक ईश्वर को व्यक्तित्वसम्पन्न तथा नैतिक सदगुणो से परिपूर्ण मानते है वे उसके स्वरूप के विषय मे अनिवार्यत मानवत्वारोपी अवधारणाा को स्वीकार करते है। परन्तु ईश्वरवादी दार्शनिको के लिए ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध मे इस मानवत्वारोपी अवधारणा को तर्कसगत रूप से स्वीकार करना सभव नही है। क्योकि अधिकाश ईश्वरवादी दार्शनिक यह मानते है कि ईश्वर शरीररहित, अभौतिक एव अतीन्द्रिय सत्ता है जो मानवीय अनुभव, ज्ञान और तर्कबुद्धि से परे है। यदि ईश्वर के स्वरूप के विषय मे इन दार्शनिको की इस मान्यता को स्वीकार कर लिया जाय तो व्यक्तिसम्पन्न तथा नैतिक सद्गुणो से परिपूर्ण महामानव के रूप मे ईश्वर की कल्पना करना निरर्थक एव असभव हो जाता है।

ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध मे मानवत्वारोपी अवधारणा की उपर्युक्त गभीर समस्या के कारण ही इस अवधारणा का खडन करते हुए *आई०एम० क्रौम्बी* कहते है कि–

1 Exodus 3 6

हमे तुरन्त यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि सामान्यत हमारे मन मे ईश्वर के स्वरूप की कोई सकल्पना नही है। हम ईश्वर को नही जानते, और यह दावा करना मूर्खतापूर्ण होगा कि हम यह जानते है कि वह किस प्रकार की सत्ता है। जब हम उसके विषय मे 'सर्वज्ञ', 'नित्य' आदि विशेषणो का प्रयोग करते है तो ये विशेषण हमे यह समझने मे समर्थ नही मानते कि ईश्वर कैसा है।————जो बात लोगो को यह मानने के लिए प्रेरित करती है कि वे ईश्वर विषयक चर्चा का अर्थ समझ सकते है वह आकाश मे कही रहने वाले अतिमानव की प्राचीन अवधारणा के अतिरिक्त और कुछ नही है। कोई भी सभ्य व्यक्ति वहॉ (आकाश मे) ऐसे प्राणी के अस्तित्व मे विश्वास नही करता, किन्तु साधारण व्यक्तियो के मन मे विद्यमान यह चित्र हमसे इस तथ्य को छिपा लेता है कि हम यह नही जानते कि हम किसके विषय मे बात कर रहे है[1]।" इसी प्रकार एक अन्य ईश्वरवादी दार्शनिक, ***जॉनहिक*** भी क्रौम्बी के उपर्युक्त मत का पूर्णत समर्थन करते है। उनका कथन है कि–

"ईसाई धर्मशास्त्र मे ईश्वर का वर्णन सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञानकता, पूर्णशुभत्व, असीम प्रेम आदि विभिन्न अपरिमित गुणो द्वारा किया गया है जिनका हम अनुभव नही कर सकते।————ये गुण मानवीय अनुभव के विषय नही हो सकते।————कोई भी ऐसी सत्ता के साक्षात्कार का दावा नही कर सकता जिसे असीम, सर्वशक्तिमान, शाश्वत, रचयिता के रूप

1 आई०एम०क्रौम्बी दि पॉसिबिलिटी ऑफ थियोलॉजिकल स्टेटमैंटस वेसिलमिचल द्वारा सम्पादित फेथ ऐंड लॉजिक में संकलित पृ०—55।

मे जाना जाता है।———केवल ईश्वर ही अपने अपरिमित स्वरूप को जानता है[2]।''

परन्तु अनेक दार्शनिक कठिनाइयो के होते हुए भी ईश्वर की मानवत्त्वारोपी अवधारणा से ईश्वरवादियो को मुक्त होना सम्भव नही है। इसका कारण यह है कि मनुष्य स्वय अपने अनुभव के आधार पर ही ईश्वर की कल्पना कर सकता है और वास्तव मे उसने ऐसा ही किया है।

मनुष्य ऐसे ईश्वर की कल्पना नही कर सकता था जिसका उसके अनुभव से कोई सबन्ध न हो। वह अपने उपास्य ईश्वर मे केवल उन्ही गुणो को आरोपित कर सकता था जिनका स्वय उसे अनुभव था और जिन्हे वह अपने लिए मूल्यवान तथा वाछनीय मानता था। अन्य वस्तुओ की भाति ईश्वर की प्राक्कल्पना के सबध मे भी उसके लिए अपने अनुभव से बाहर जाना सभव नही था। इसी कारण मनुष्य का आराध्य ईश्वर मूलत स्वय उसी के अनुरूप है।

वस्तुत कहा जा सकता है कि ईश्वर का व्यक्तित्वपूर्ण होना नैतिक एकेश्वरवाद की एक प्रमुख विशेषता है। अपनी इसी विशेषता के कारण ईश्वर लोगो की पीडा को समझ सकता है और उनके अच्छे—बुरे कार्यो के अनुसार फल दे सकता है। मानवत्वारोपी अवधारणा के आक्षेप से उसके ईश्वरत्व मे कोई कमी नही आती अपितु यह उसकी (ईश्वर की) व्यापकता एव उदारता का ही परिचायक है व्यक्तित्त्वपूर्ण ईश्वर ही भक्तो का उपास्य हो सकाता है, यही धर्म का मुख्य तत्व है।

---

2 जॉन हिक थियालाजी ऐड वेरिफिकेशन बेसिलमिचल द्वारा सम्पादित दि फिलॉसाफी ऑफ रिलिजन मे सकलित पृ० 68-69।

ईश्वर प्रेमी है। वह अपने प्राणियो से प्रेम करता है। लेकिन ईश्वर का प्रेम मानवीय प्रेम का पर्यायवाची नही है। प्रेम दो प्रकार का होता है –

पहला वासनायुक्त प्रेम (Desiring love) होता है, जिसे ग्रीक शब्दो मे 'एरोस' (Eros) कहा जाता है और दूसरा है देने वाला प्रेम (Giving Love) जिसे ग्रीक शब्दो मे एगेपे (Agape) कहा जाता है। मनुष्यो का प्रेम वासनायुक्त प्रेम है जबकि ईश्वर का प्रेम देने वाला प्रेम है। वानायुक्त प्रेम प्रेमी के वाछित गुणो के आधार पर किया जाता है और विषयवस्तु की प्रियता पर आधारित होता है। जैसे–मॉ अपने बच्चो से इसलिए प्रेम करती है कि वे उसके बच्चे है। दूसरी तरह 'देनेवाला प्रेम' (Giving love) विषयवस्तु की प्रियता पर आधारित नही होता। यह केवल विषयवस्तु के प्रति निरपेक्ष प्रेम है। इस प्रेम मे किसी प्रकार की शर्त्त नही होती जिससे यह सार्वभौमिक एव परम प्रेम होता है। ईश्वर का प्रेम मनुष्यो के अधिकतम हित एव सुख के लिए होता है। न्यूटेस्टामेट मे "ईश्वर प्रेम है" (God is love) ऐसा वर्णन किया गया है। अपनी इन्ही विशेषतओ के कारण ईश्वर देने वाला प्रेमी (Agape) है।

ईश्वर सर्वज्ञ है। ईश्वर की सर्वज्ञता का अर्थ यह है कि उसे रापूर्ण जगत् अर्थात् सभी भौतिक वस्तुओ पेड पौधो तथा प्राणियो और भूत, वर्त्तमान एव भविष्यत् की समस्त घटनाओ का पूर्ण ज्ञान है। ईश्वर की सर्वज्ञता का कारण यह है कि इसी ने सपूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है और वह इसमे सर्वत्र व्याप्त है। बाइबिल मे ईश्वर की सर्वज्ञता का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

"Before him no creature is hiden, but all are open and laid bare to the eyes of him with whom we have to do[1]" अर्थात् ईश्वर के लिए कोई भी वस्तु छुपी हुई नही है अपितु उसकी ऑखो के सामने सब कुछ स्पष्ट है। बाइबिल मे आगे कहा गया है—"God is greater than our hearts, and he knows everything[2]" अर्थात् ईश्वर हमारे ह्रदय से महान् है और वह सब कुछ जानता है।

ईश्वर की सर्वज्ञता दो रूपो मे स्पष्ट की जा सकती है—पहला यह कि ईश्वर असीम रूप से जो था, है और होगा को जानता है, सत्य है। दूसरा यह कि यद्यपि ईश्वर वह सबकुछ जानता है जो था, है और होगा लेकिन असीम रूप से नही। ईश्वर सब कुछ जानता है यह किसी समय विशेष मे सम्भव है जैसे कि हम किसी वस्तु को समय—विशेष मे जानते है।

लेकिन इस दूसरे रूप मे ईश्वर के जानने से सम्बन्धित दो विचार मिलते है—

पहला, यह कहा जाता है कि ईश्वर वह सब कुछ जानता है जो था, है, और होगा सत्य है।

दूसरा, जब यह कहा जाता है कि ईश्वर वह सब कुछ जानता है जो था, है और होगा सत्य है, और यदि ईश्वर भविष्य मे होने वाली प्रत्येक वस्तुओ एव घटनाओ को जानता है तो इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु निर्धारित है, यहॉ तक कि

1 Heb 4 13
2 1 John 3 20

मनुष्य के कार्य भी निर्धारित है—अर्थात् मनुष्य निर्धारित है वह स्वतन्त्र नही है। यह नियतिवाद को स्वीकार करता है।

इस नियतिवाद से बचने के लिए कहा जाता है कि ईश्वर वह सबकुछ जातना है जो 'था' और 'है', सत्य है परन्तु जो होगा उसे वह तभी जानता है जबकि वह किसी वर्तमान विषय के द्वारा निर्धारित होता हो। सुधार का यह बिन्दु ईश्वर को यह जानने से बचाता है कि लोग भविष्य मे स्वतन्त्रतापूर्वक क्या करेगे। इसी पर यह कल्पना भी आधारित है कि एक स्वतन्त्र क्रिया पूर्व की स्थितियो द्वारा निर्धारित नही की जा सकती।

अत यह कहा जा सकता है कि ईश्वर केवल यह जानता है कि जो 'था' और 'है' सत्य है, और जो सत्य होगा वह तभी सम्भव है जब वह वर्तमान घटनाओ द्वारा निर्धारित होता हो।

ईश्वर पूर्ण एव अपरिवर्तनशील है। ईश्वर नित्य पूर्ण है। एक पूर्ण सत्ता मे किसी प्रकार का परिवर्तन उसकी कमी का सूचक है। इसलिए ईश्वर परिवर्तित नही होता, वह अपरिवर्तनीय है। बाइबिल मे ईश्वर की अपरिवर्त्तनीयता इन शब्दो मे व्यक्त की गई है—

"Every good endowment and every perfect fift is from above, coming down from the Father of lights with whom there is no variation or shadow due to change "

कीथवर्ड के बनुसार केवल अपरिवर्तित सत्ता ही विश्व मे परिवर्तन का स्थायी आधार हो राकता है। ईश्वर की अपरिवर्तनीयता के आधार पर ही हम स्थिरता, नियमितता, एव आकस्मिक परिवर्तन की क्रमिकता की जिम्मेदारी ले सकते है।

इसी प्रकार का विचार ***गीच (Geach)*** ने अपनी पुस्तक– प्राविडेस एण्ड एविल" (Piovidence and Evil, page-6) मे व्यक्त किया है कि 'यदि केवल ईश्वर शुभ, सर्वशक्तिमान और अपरिवर्तित है तभी हम उस पर निपेक्ष रूप से विश्वास कर सकते है। यदि ईश्वर परिवर्तनशील होगा तो उसमे इस प्रकार की कोई भी जिम्मेदारी सम्भव नही है।"

ईश्वर ***सर्वशक्तिमान*** (omnipotent) है। ईश्वर को ***सर्वशक्मितमान*** कहने का अर्थ यह है कि उसमे असीम शक्ति है और इसी कारण सम्पूर्ण ब्रह्माड पर उसका पूर्ण नियन्त्रण है। ईश्वर अपनी इच्छानुसार सब कुछ कर सकता है—ऐसा कोई कार्य नही है जिसे करना उसके लिए असभव हो। वही प्रकृति के समस्त नियमो का विधायक है अत वह अपनी इच्छानुसार इन नियमो का उल्लघन भी कर सकता है। ईश्वर के सम्बन्ध मे अपनी इसी मान्यता के कारण भक्त उसकी पूजा या उपासना करता है और अपने आपको उस पर पूर्णत निर्भर मानता है। इसी कारण सर्वशक्तिमत्ता को ईश्वर का बहुत महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य गुण माना जाता है। बाइबिल मे भजन करने वाले (Psalmist) कहते है—

"Our God is in the heavens, he does whatever he pleases" अर्थात् हमारा ईश्वर स्वर्ग मे रहता है और प्रसन्न होकर कार्य करता है।

Jeimiah (जेरेमिह) ईश्वर से कहता है—"Nothing is too hard you thee" अर्थात तुम्हारे लिए कुछ भी कठिन नही है।

Jesus (ईशामसीह) कहते है—"With God all things are possible" अर्थात् ईश्वर के लिए सबकुछ सम्भव है।

परन्तु इस सर्वशक्तिमत्ता के सम्बन्धत मे अनेक समस्याए उत्पन्न होती है। यदि ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने का अर्थ यह है कि उसके लिए कुछ भी करना सभव है तो हमारे समक्ष अनेक जटिल प्रश्न उपस्थित हो जाते है जिनका कोई सतोषप्रद एव युक्तिसगत समाधान सम्भव नही हो पाता। इन प्रश्नो मे कुछ प्रश्न है—

क्या ईश्वर किसी ऐसे त्रिभुज की रचना कर सकता है जिसकी चार भुजाए हो ? क्या ईश्वर आत्महत्या कर सकता है? क्या वह झूठ को सच बना सकता है? क्या वह पाप कर सकता है? क्या वह इतना भारी पत्थर बना सकता है जिसे वह स्वय न उठा सके? इस प्रकार के प्रश्नो को दार्शनिको ने ***'सर्वशक्तिमत्ता के विरोधाभास'*** कहा है जिनका तर्कसगत समाधान सभव नही है। जैसे यदि वह चार भुजाओ वाली आकृति की रचना कर सके तो वह त्रिभुज ही नही होगा और यदि रचना न कर पाये तो वह सर्वशक्तिमान कैसे? इसी तरह यदि वह आत्महत्या कर सकता है तो वह नित्य अथवा शाश्वत नही रह जाता जिसे ईश्वरवादी स्वीकार करते है, और यदि वह आत्महत्या नही कर सकता तो वह सर्वशक्तिमान नही हो सकता। इसी प्रकार ईश्वर झूठ को सच नही बना सकता, क्योकि यह एक तार्किक असम्भावना है। और अनेक ईश्वरवादी दार्शनिको के अनुसार ईश्वर ऐसा कोई भी कार्य नही कर सकता जो तार्किक दृष्टि से असम्भव है। यदि ईश्वर पाप कर सकता है तो उसकी नैतिक पूर्णता खण्डित हो जाती है और यदि वह पाप नही कर सकता तो उसकी

सर्वशक्तिमत्ता का अन्त हो जाता है। उपरोक्त अन्तिम विरोधाभास के दोनो ही रूप ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का खण्न करते है। यदि ईश्वर इतना भारी पत्थर बना सकता है जिसे वह स्वय नही उठा सकता तो उसे सर्वशक्तिमान नही माना जा सकता और यदि वह ऐसा पत्थर नही बना सकता तब भी उसे सर्वशक्तिमान नही कहा जा सकता। यह उदाहरण विशुद्ध रूप से तार्किक है।

अत नैतिक एकेश्वरवाद की जिस अवधारणा को हम ग्रहण करते हुए उस ईश्वर को अस्तित्व के प्रमाणित करने का प्रयास करेगे, उसके सर्वशक्तिमान होने का आशय यही है कि वह ऐसा हर कार्य कर सकता है– जो तार्किक रूप से सम्भव है। तार्किक रूप से असम्भव कार्यो को करना इस ईश्वर की अवधारणा के बाहर है।

ईश्वर नित्य (Eternal) है। ईश्वर के सम्बन्ध मे 'नित्यता' शब्द का प्रयोग सामान्यत दो अर्थो मे किया जाता है। इसके प्रथम अर्थ मे ईश्वर को 'नित्य' कहने का तात्पर्य यह है कि वह शाश्वत, अनश्वर, अपरिवर्तशील, अनादि तथा अनन्त है। इस दृष्टि से ईवर की सत्ता समस्त सासारिक वस्तुओ के अस्तित्व से भिन्न है क्योकि समस्त सासारिक वस्तुए अनित्य है। ईश्वर का प्रारम्भ या अन्त नही होता।

परन्तु ईश्वर की 'नित्यता' का दूसरा अर्थ उपर्युक्त अर्थ से कुछ भिन्न है। 'नित्यता' के इस दूसरे अर्थ के अनुसार ईश्वर काल के अन्तर्गत न होकर उससे परे अथवा कलातीत है परन्तु इस अर्थ मे भी ईश्वर शाश्वत, अनश्वर और अपरिवर्त्तनशील है।

इस विषय मे सन्त अन्सेल्म का विचार द्रष्टव्य है– "Thus thow wast not yesterday, and thou shalt not be tomorrow, but yesterday and today and tomorrow thau art, Indeed, it is not even that thou art yesterday and today and tomorrow, rather, thou simply art, outside all time For yesterday and today and tomorrow belong solely to time, but though nothing exists without thee thou art not in place or time, but all things are in thee, For nothing contains thee, but though contaiest all things[1],"

अर्थात् 'तुम कल नही थे और कल नही रहोगे, लेकिन, कल (Yesterday), आज और कल (Tomorrow) तुम्ही हो। वास्तव मे ऐसा नही है कि तुम कल (बीता हुआ कल) आज और कल (आने वाला कल) हो बल्कि तुम समय से बाहर हो। कल (बीता हुआ कल) आज और कल (आने वाला कल) एकमात्र समय के लिए है लेकिन तुम्हारे बिना किसी चीज का अस्तित्व नही है, तुम किसी देश या काल मे नही हो, अपितु सभी वस्तुए तुममे है। कोई भी वस्तु तुम्हे धारण नही कर सकती, बल्कि तुम सभी वस्तुओ को धारण किये हो।

परन्तु ईश्वर की नित्यता पर दो प्रकार की आपत्तियॉ की जा सकती है। प्रथम यह कि ईश्वर मे अवधि नही है। जैसा कि आगस्टाइन ने कहा है–"Thy years do not come and go, while these years of ours do come and go, inorder that they might come--------Thy present day does not give place to tomorrow, nor indeed, does it take the place of yesterday

---

1 Proslogion ' chap 19 trans, E R Fairwether in " A Scholastic Miscellany", P 86 & 87, re-Printed in Hick's Philosophy of Religion' P 8

Thy present day is eternity[2]" अर्थात् तुम्हारे वर्ष न आते है, न जाते है जबकि हमारे ये वर्ष क्रमश आते और जाते है और उसी क्रम मे उन्हे आना भी चाहिए———तुम्हारा वर्तमान् (आज) कल (आने वाला कल) के लिए स्थान नही देता और न ही कल (बीते हुए कल) के लिए कोई स्थान देता है। तुम्हारा वर्तमान नित्य है।

ईश्वर की नित्यता पर दूसरी आपत्ति यह है कि ईश्वर मे सासारिक अवस्थिति (Temporal location) नही है। अर्थात् ईश्वर मे 'पहले' या बाद' की स्थिति नही है। जैसा कि—सन्त अन्सेल्म ने कहा है—

"So it is not that you existed yesterday, or will exist tomorrow, but that yesterday, today and tomorrow, you simply are Or rather, you exist neither yesterday, today nor tomorrow, but you exist directly right outside time " अर्थात् यह नही है कि तुम कल थे, अथवा कल रहोगे अपितु यह कि कल (बीता हुआ), आज और कल (आने वाला) सामान्यत तुम हो। अथवा तुम न तो कल थे, न आज और न कल रहोगे अपितु तुम समय के बाहर हो।

स्विनबर्न (Suinburne) अपनी पुस्तक 'The Coherence of Theism' (द कोहरेन्स ऑफ थीज्म) मे इस सम्बन्ध मे अपना विचार व्यक्त किया है जिसका आशय यह है कि यदि विश्व का रचयिता इस समय अस्तित्ववान है तो से कम से कम तब तक अस्तित्ववान होना चाहिए जबतक दूसरी आकस्मिक

2 Confusions Book XI 13 re printed in 'An Introduction to the Philosophy of Religion' by Brain Davis P 77

(Contingent) वस्तुए अस्तित्ववान है। ईश्वर हमेशा अस्तित्ववान है, ऐसा कोई समय नही है जिसमे इसका अस्तित्व न हो।

ईश्वर को पवित्र (Holy) ***भी कहा गया है***। यह गुण केवल ईश्वर मे ही पाया जाता है। ***रूडोल्फ ऑटो*** ने अपनी पुस्तक "The Idea of the Holy" मे ईश्वर को (Holy) पवित्र कहा है। ईश्वर की इस अवधारणा का रूप हमे गीता के ईश्वर के विराट् रूप मे मिलता है। बाइबिल मे भी ईश्वर के 'पवित्र' (Holy) होने को इन शब्दो मे व्यक्त किया गया है–"The light and lofty one who iahabits eternity, whose name is Holy[1]" अर्थात् ईश्वर एक उच्च और उदार चरित है, जो नित्य रूप से निवास करता है, जिसका नाम पवित्र (Holy) है।

उपरोक्त विशेषताए नैतिक एकेश्वरवाद की आधारभूत विशेषताए है। उस ईश्वर को जिसके अस्तित्व को हम अपने शोध–प्रबन्ध मे प्रमाणित करने का प्रयास कर रहे है वह ईश्वर यही है, यही उसकी अवधारणा है, जिसमे उपरोक्त सभी विशेषताए विद्यमान है।

---

1 Isaiah 57 15

अध्याय-दो

ईश्वर के अस्तित्व के लिए परम्परागत सैद्धान्तिक ।क

अध्याय–द्वितीय

ईश्वर की नैतिक एकेश्वरवादी अवधारणा जिसकी चर्चा पिछले अध्याय मे की जा चुकी है, के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए परम्परागत सैद्धान्तिक तर्क प्रस्तुत किये गये है। ये प्रमाण है –

1 सत्तामूलक प्रमाण (Ontologıcal Argument)

2 विश्वमूलक प्रमाण (Cosmologıcal Argument)

3 प्रयोजनमूलक प्रमाण (Teleologıcal Argument)

1. सत्तामूलक प्रमाण (Ontological Argument)

सत्तामूलक युक्ति एक शुद्ध बौद्धिक युक्ति है, जिसमे किसी अनुभवात्मक आधार का सहारा नही लिया जाता । यह एक पूर्ण प्रागनुभविक युक्ति है इसलिए यह अन्य युक्तियो से भिन्न है। इस युक्ति का प्रतिपादन सर्वप्रथम कैन्टरबरी (Canterbury) के मध्यकालीन धर्मशास्त्री सन्त अन्सेल्म (1033–1109) ने किया था लेकिन कुछ विचारक अन्सेल्म के तर्क को आगस्टाइन के 'डी' लिबेरो आरबिट्रिओ', II (De Lıbero Arbıtrıo, II) मे पाते है और आगस्टाइन को ही सत्तामूलक प्रमाण के वास्तविक जनक के रूप मे मानते है। किन्तु सत्तामूलक युक्ति को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय सन्त अन्सेल्म को ही है। इसी युक्ति को आगे चलकर डेकार्ट, लाइबनीज, आदि दार्शनिको ने स्वीकार किया था। सन्त थॉमस अक्वाइनस ने इस युक्ति को अस्वीकार किया था और डेकार्ट के समकालीन कुछ दार्शनिको ने, जिनमे

गैसेन्डी का नाम उल्लेखनीय है, इसका खण्डन किया था। बाद मे काट द्वारा इस की विस्तृत आलोचना की गई थी।

सत्तामूलक प्रमाण के दो रूप है। प्रथम रूप मे दार्शनिक लोग ईश्वर के प्रत्यय मात्र से उसके अस्तित्व को स्थापित करते है। और दूसरे रूप मे ईश्वर के प्रत्यय से ही दार्शनिक लोग यह स्थापित करना चाहते है कि ईश्वर अनिवार्यत अस्तित्ववान है। उसका अस्तित्व अनिवार्य है।

प्रमाण के प्रथम रूप मे हम सन्त अन्सेल्म एव डेकार्ट के तर्को पर विचार करेगे। अन्सेल्म विचार के—एक सूत्र की खोज करते है जिसके द्वारा वे ईश्वर का अस्तित्व और स्वरूप दोनो सिद्ध करते है। अन्सेल्म अपने प्रोस्लोजिऑन (Proslogıon) मे ईश्वर की अवधारणा को व्यवस्थित ढग से व्यक्त करते हुए कहते है कि –

"कोई वस्तु जिससे महान् की कल्पना न की जा सके," यह स्पष्ट है कि 'महान्' से अन्सेल्म का आश्रय विशेष रूप से बडा होने से नही है, उनका आश्रय 'अधिकपूर्ण', 'अधिकवास्तविक' सत्ता से है—"Somethıng than whıch nothıng greateı can be conceıved"

अन्सेल्म अपने 'प्रोस्लोजिआन' के अध्याय दो मे कहते है कि निश्चित रूप से ईश्वर है जबकि एक मूर्ख कहता है कि उसके हृदय मे कोई ईश्वर नही है। लेकिन अन्सेल्म ईश्वर को प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है। उसका कहना है कि जब हम एक मूर्ख से यह कहते है कि वह जिससे महान् की

कल्पना' न की जा सके' और मूर्ख इसे सुनता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह जो सुनता है उसे समझता (भी) है। वह जो समझता है वह उसकी बुद्धि से सम्बन्धित होता है, जबकि वह यह नही समझता कि वह अस्तित्ववान भी है। वह वस्तु जो वास्तविक रूप मे अस्तित्ववान है, उस वस्तु से अधिक महान् है जो केवल विचार के रूप मे ही अस्तित्ववान है। किसी वस्तु का मन के साथ–साथ वास्तविकता मे भी अस्तित्व रखना उसकी अधिक, महानता का सूचक है। अत वह जिसका अस्तित्व केवल मन मे है वह वस्तु नही हो सकता जिससे महान् की कल्पना नही की जा सकती क्योकि फिर उससे भी अधिक महान् वस्तु वह कही जा सकती है जिसका अस्तित्व मन के साथ–साथ वारतविकता मे भी है। अत यह कहना कि महत्तम वस्तु का अस्तित्व केवल मन मे है, एक आत्मविरोधी स्थिति होगी क्योकि यहॉ एक महत्तम वस्तु की कल्पना करके वस्तुत यह कहा जा रहा है कि वह महत्तम नही है। इस आत्मविरोध से बचने का एक ही उपाय है कि हम यह स्वीकार करे कि वह जिससे महत्तर वस्तु की कल्पना नही की जा सकती यानि ईश्वर का वास्तविकता मे अस्तित्व है। अन्सेल्म एक चित्रकार के उदाहरण द्वारा इसे और स्पष्ट करते हुए बतलाता है कि जब एक चित्रकार एक चित्र को चित्रित करने की कल्पना करता है तो पहले यह केवल एक बौद्धिक विचार मात्र होता है जबकि अभी वह यह नही समझता है कि उसका अस्तित्व भी है, क्योकि उसने इसे अभी बनाया नही है। उसके चित्रित करने के बाद वह (चित्र) दोनो रूपो मे अस्तित्ववान हो जाता है–विचार के रूप मे भी और वास्तविक अस्तित्व के रूप मे भी। जब 'ईश्वर वह है

जिससे महान् की कल्पना नही की जा सकती है मूर्ख' के विचार मे आता है, तो इसे वास्तविक अस्तित्व के रूप मे भी कल्पना की जानी चाहिए। क्योकि यदि वह जिससे महान की कल्पना नही की जा सकती'' केवल विचार मे ही अस्तित्ववान है तो इससे वह सत्ता अधिक महान् है जो विचार के अलावा वास्तविक रूप से भी अस्तित्ववान है और यही सत्ता ईश्वर है।

आगस्टाइन द्वारा दी गई ईश्वर की परिभाषा सन्त अन्सेल्म द्वारा दी गई ईश्वर की परिभाषा का पूर्वरूप माना जा सकता है। आगस्टाइन की ईश्वर की परिभाषा है कि—'जिससे श्रेष्ठ कुछ न हो' (above which there is no superior")[1]

अन्सेल्म के बाद सत्तामूलक प्रमाण के इतिहास मे से दूसरा मुख्य काल रेने डेकार्ट (1596—1650) प्रारम्भ होता है और जिसे **'आधुनिक दर्शन का जनक'** माना जाता है। डेकार्ट ने तत्वत इसी युक्ति को दूसरे ढग से रखा था। उसने ईश्वर को एक पूर्णातिपूर्ण तत्व के रूप मे परिभाषित किया अर्थात् ऐसे तत्व के रूप मे जिसमे हर प्रकार की पूर्णता है। ऐसे तत्व मे स्पष्ट है कि किसी विधानात्मक गुण का अभाव नही होगा। अब यदि ऐसा तत्व सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ आदि प्रशसनीय गुणो से युक्त होते हुए भी अस्तित्व नही रखता तो वह स्पष्टत उस तत्व की तुलना मे अपूर्ण होगा जिसमे उपर्युक्त गुणो के साथ साथ अस्तित्ववान होने का भी गुण है। यानि यदि ईश्वर अस्तित्वविहीन है तो वह पूर्णातिपूर्ण नही हो सकता। लेकिन ईश्वर की परिभाषा ही

---

1 आन फ्री विल II, IV 14 ट्रास्ले० जे०एच०एस० बर्लिन इन आगस्टाइन्स अर्लियर रायटिंग्स' (लदन एस०सी०एम० प्रेस 1953) पृष्ठ 144

पूर्णातिपूर्ण तत्व के रूप मे की गई है। अत उसका अस्तित्व होना एक अनिवार्यता है वरन् एक आत्म–विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। दूसरे शव्दो मे यह कहना कि ईश्वर का अरितत्व नही है यह कहने के समान होगा कि एक पूर्णातिपूर्ण तत्व पूर्णातिपूर्ण नही है । इस तरह से हम ईश्वर के प्रत्यय के अर्थ के स्पष्टीकरण के द्वारा ही उसका अस्तित्व स्थापित करते है और इसके लिए हमे किसी अन्य आश्रय की आवश्यकता नही होती। डेकार्ट ने कहा था कि जिस तरह 'त्रिभुज' की परिभाषा ही यह निश्चित करती है कि त्रिभुज मे अनिर्वायत तीन कोण होते है, उसी प्रकार 'ईश्वर' की परिभाषा ही यह निश्चित करती है कि ईश्वर की अनिवार्य सत्ता है। यह कहना कि ईश्वर की सत्ता नही है उसी प्रकार आत्मविरोधी है जैसे कि यह कहना कि त्रिभुज मे चार कोण है।

इस प्रकार हम देखते है कि डेकार्ट मुख्यत दो बिन्दुओ को महत्व देते है–

1 अस्तित्व पूर्णता है, और

2 अस्तित्व ईश्वर के सार (essence) से अलग नही किया जा सकता।

प्रथमत डेकार्ट स्पष्टत कहता है कि अस्तित्व एक पूर्णता है और हमे ईश्वर को हर प्रकार की पूर्णता से युक्त मानना चाहिए, यद्यपि हम उन सभी का विवरण नही दे सकते। वह (ईश्वर) सब प्रकार की पूर्णताओ से युक्त है, और अस्तित्व इनमे

से एक है। डेकार्ट सक्षेप मे अपने तर्क को इस प्रकार रखते है –

"It is in truth necessary for me to assert that God exists after having presupported that he Possesses every sort of perfection, since existence is one of these"

देकार्त्त का दावा है कि परमपूर्ण सत्ता के अन्यगुणो एव अस्तित्व के गुण मे एक विश्लेषणात्मक सम्बन्ध है डेकार्ट के शब्दो मे –

"It is certain that I noless find the idea of God, that is to say, the idea of a supremely perfect Being, in me, than that of any figure or number whatever it is, and I do not know any less clearly and distinctly that an (actual and) eternal existence pertains to this nature than I know that all that which I am able to demonstrate of some figure of number truly pertains to the nature of this figure or number[1]

द्वितीयत देकार्त्त का कहना है कि अस्तित्व को ईश्वर के सार (essence) से अलग नही किया जा सकता। देकार्त्त के शब्दो मे –

"Existence can no more be separated from the essence (or definition) of God than can its having its three argles equal to two right angles be separated from the essence of a (rectilinear) triangle, or the idea of a mountain from the idea

---

1 मेडिटेशन्स ट्रासले हॉलडेन एण्ड रास (Haldene and Ross) द फिलॉफिकल वर्क्स आफ डेकार्टस–I (केम्ब्रिज 1911) पृष्ठ 182

of a valley, and so there is not any less repugnance to our conceiving a God (that is, a being supremely perfect) to whom existing is lacking (that is to say, to whom a certain perfection is lacking), than to conceive of a mountain which has no valley"[1]

जॉनहिक के अनुसार देकार्त द्वारा प्रयोग किये गये पर्वत और घाटी का उदाहरण बहुत उपयुक्त नही है, क्योकि एक जहाज के ऊपर एक पर्वत हो सकता है जिसकी कोई घाटी नही है। इस सम्बन्ध मे देकार्त का प्रत्युत्तर है कि–"इस तथ्य से कि मै घाटी (Valley) के बिना पवर्त की कल्पना नही कर सकता"। यह इसका अनुसरण नही करता कि यहॉ कोई पर्वत या घाटी अस्तित्व मे है, लेकिन केवल वह पर्वत और घाटी चाहे वे अस्तित्व मे हो अथवा न हो, किसी भी रूप मे एक को दूसरे से अलग नही किया जा सकता। जबकि इस तथ्य से कि मै ईश्वर की कल्पना अस्तित्व के बिना नही कर सकता, यह अनुसरण करता है कि अस्तित्व उससे अलग होने योग्य नही है, और इस प्रकार वह वास्तव मे अस्तित्ववान है–

"From the fact that I cannot conceive a mountain without a valley, it does not fallow that there is any mountain or any valley in existence, but only that the mountain and the valley, whether they exist or do not exist, cannot in any way be separated one from the other, while from the fact that I cannot conceive God without existence it fallows that

1 पूर्वोक्त पृ०–181

existence is inseparable from him, and hence that he really exists "[1]

सन्त अन्सेल्म और देकार्त्त की युक्तियाँ तत्वत समान ही है लेकिन देकार्त्त के युक्ति की विशेषता यह है कि उसमे प्रत्यय सत्ता युक्ति की निहित पूर्वमान्यता अधिक स्पष्ट हो गई है। यह पूर्वमान्यता अस्तित्व के प्रत्यय के सम्बन्ध मे है। अन्सेल्म और देकार्त्त दोनो ही यह पहले से मानकर चलते है कि हम अस्तित्त्व को एक महानतम अभिनन्दनीय गुण या एक प्रकार की पूर्णता के रूप मे स्वीकार कर सकते है। देकार्त्त के समय गैसेन्डी और बाद मे काट ने बृहद और अधिक स्पष्ट रूप से इसी मान्यता पर अपना मुख्य प्रहार किया था।

आलोचना

सन्त अन्सेल्म का समकालीन गौनीलो (Gaunilo) जो मारमौटीयर (Marmoutier) का एक सन्यासी था मूर्ख विषयक सन्त असेल्म के तर्क की आलोचना करता है। यद्यपि वह सन्त अन्सेल्म के निष्कर्ष की कि—ईश्वर का अस्तित्व है—का खण्डन नही करता है क्योकि वह ईश्वर के अस्तित्व की कल्पना अन्य आधारो पर करता है। लेकिन वह सन्त अन्सेल्म द्वारा स्वीकृत तर्क का विरोध करता है जो वास्तव मे एक वैध युक्ति नही है। गौनीलो निम्न बिन्दुओ के आधार पर अन्त अन्सेल्म की युक्ति का खण्डन करता है—

1 पूर्वोक्त पृ०–181

1 सन्त अन्सेल्म के अनुसार जब हम सुनते है कि ईश्वर का अस्तित्व है, तो हम उसे समझ लेते है। इस समझ के द्वारा सन्त आन्सेल्म ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करते है। लेकिन गैनीलो कहता है कि ईश्वर के अस्तित्व का विचार एक अवास्तविक सत्ता से अलग विचार नही है। जब कोई व्यक्ति एक अवास्तविक सत्ता के बारे मे बात करता है तो हम उसे सुनते है, समझते है, लेकिन इसका आशय यह नही है कि अवास्तविक सत्ता वास्तव मे भी अस्तित्ववान है। 'वह जिससे महान की कल्पना नही की जा सकती" उसी प्रकार जानी जा सकती है जैसे किसी असत्य या सदिग्ध वस्तु को जाना जाता है। इस सम्बन्ध मे गौनीलो का विचार है कि—

"This being is said to be in my understanding already, only because I understand what is said Now could in not with equal justice be said that I have in my understanding all manner of unreal objects, having absolutely no existence in themselves because I understanding these things if one speaks of them, whatever they may be?"[1]

2 गैनीलो को यह प्रतीत होता है कि जिस तर्क से सन्त अन्सेल्म ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करते है उसी तर्क से चाहे तो किसी भी वस्तु की सत्ता सिद्ध कर सकते है। गैनीलो एक पूर्णत परिपूर्ण 'लास्टआइसलैण्ड' (Lost Island) के लिए समानान्तर सत्तामूलक प्रमाण प्रस्तुत करते

---

[1] इज द [illegible] एग्जिस्टेन्स ऑफ गाड कन्सीवेबल बाई सन्त आन्सेल्म/गौनीलो इन रैशनलिटी ऑफ बिलीफ इन गाड एडिटेड बाइ जार्ज I मावरोडस पृष्ठ-30

है कुछ लोग कहते है कि समुद्र मे कही एक द्वीप (Island) है जिसे वे कठिनता के कारण या जिसका अस्तित्व नही है उसे पाने की असम्भावना के कारण लास्टआइसलैण्ड (Lost Island) कहते है। वे कहते है कि यह अत्यधिक समृद्ध, अमूल्य सम्पत्तियो एव प्रकाश से युक्त, भाग्यवानो का द्वीप है यद्यपि इसका कोई मालिक या निवासी नही है, यह अपनी दुर्लभ समृद्धि एव उत्पादकता के साथ लोगो के निवास करने योग्य अन्य द्वीपो से बढकर है ।

जब कोई मुझसे कहता है कि इस तरह का एक द्वीप है तो मै आसानी से समझ जाता हूँ कि क्या कहा जा रहा है, इसके लिए कोई कठिनाई नही है । इसी के परिणामस्वरूप मान लीजिए वह यह कहता है कि आप सशय नही कर सकते कि सभी द्वीपो से अलग यह द्वीप वास्तव मे कही अस्तित्ववान है, क्योकि यह आपके विचार से सम्बन्धित है। चूँकि यह द्वीप सामान्य रूप से विचारो से सम्बन्धित होने के कारण ही विशिष्ट नही है अपितु साथ ही वास्तविक रूप से होने के कारण भी है । इसलिए इस द्वीप को अनिवार्य रूप से वास्तविक होना चाहिए। अन्यथा कोई दूसरा द्वीप जो वास्तव मे अस्तित्ववान है, इस द्वीप से अधिक विशिष्ट होगा और यह द्वीप जिसे हमने सभी द्वीपो से विशिष्ट समझा है, तब उससे विशिष्ट नही हो सकेगा ।

यदि मै पुन कहूँ कि कोई इस तर्क के द्वारा मुझे यह प्रमाणित करना चाहे कि यह द्वीप वास्तव मे है, तो मै सोचूँगा कि वह मजाक कर रहा है, अथवा यदि मै युक्ति को स्वीकार

कर लेता हूँ तो मै नही समझ सकता कि ज्यादा मूर्ख कौन है इसे स्वीकार करने के कारण मै आथवा वह जिसने किसी प्रकार की निश्चितता के साथ इस द्वीप के अस्तित्व को सिद्ध करने की कल्पना किया है। उसे सर्वप्रथम यह दिखाना होगा कि यह विशिष्ट द्वीप विशुद्ध व स्वीकार करने योग्य वास्तविक वस्तु के रूप मे अस्तित्ववान है न कि असत्य या अनिश्चित वस्तु के केवल विचार रूप मे ।

हम गौनीलो के तर्क को सन्त अन्सेल्म के ढग से कह सकते है कि—

1 लॉस्ट आइसलैण्ड (Lost Island) एक ऐसा द्वीप है जिससे बडे द्वीप की कल्पना नही की जा सकती है।

2 एक द्वीप जिससे बडे द्वीप की कल्पना नही की जा सकती है का अस्तित्व है।

3 'लास्ट आइसलैण्ड' (Lost Island) का अस्तित्व है।

गैनीलो की आलोचना का उत्तर देते हुए सन्त अन्सेल्म कहते है कि यह लास्ट आइसलैण्ड का तर्क ईश्वर के तर्क के समान नही है। अन्सेल्म के शब्दो मे—

"I confidently say that if anyone discovers for me something existing either in fact or at least in thoughat, other than "than which a greater can not be conceived", and is able to apply the logic of my argument to it I shall find that "Lost

Island" for him and shall give it to him as something which he will never lose again "[1]

ईश्वर के प्रत्यय की विशिष्टता को महत्व देते हुए सन्त अन्सेल्म गौनीलो के आक्षेप का उत्तर देते है—यह दिखाने के लिए कि सत्तामूलक प्रमाण जो केवल इसी पर लागू होता है, इस तर्क के दूसरे रूप पर आधारित है, जिसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा। हम यह कह सकते है कि ईश्वर के प्रत्यय मे वह तत्व जिसकी सब ढग से पूर्ण द्वीप के विचार मे कमी है—वह अनिवार्य अस्तित्व है। एक द्वीप (अथवा कोई दूसरा भौतिक विषय) परिभाषा से आपातिक विश्व का एक भाग है। इसलिए बिना किसी विरोधाभास के उनकी न होने की कल्पना कर सकते है और इसलिए अन्सेल्म का तर्क उन पर लागू नही होता। यह केवल सब प्रकार से पूर्ण एक ऐसी काल्पनिक सत्ता पर लागू होता है जो परमपूर्णता से युक्त है और जिसके न होने की कल्पना तक नही की जा सकती है।

उपरोक्त आपत्ति के अतिरिक्त सन्त अन्सेल्म के तर्क पर कुछ अन्य आपत्तियॉ भी है। ईश्वर अनिवार्य रूप से अस्तित्ववान है, क्योकि उसके न होने की कल्पना नही की सकती अथवा ईश्वर है क्योकि ईश्वर वह है जिससे महान की कल्पना नही की जा सकती। ये सभी हमारे द्वारा दी गई ईश्वर की परिभाषाए है। ये परिभाषाऐ ईश्वर क्या है? की व्याख्या के लिए प्रयोग की गई है, ईश्वर का अस्तित्व है या नही, इसके लिए नही। बार्नेस (Barnes) के अनुसार सन्त अन्सेल्म ने यह दिखाने का प्रयास नही किया है कि क्यो गौनीलो का द्वीप उसके (ईश्वर के) समान नही है।

1 द गेनी फेम्ड आरगुमेन्ट' एडि० जॉन हिक एण्ड आर्थर मैकगिल पृ०—23

अब हम सन्त थॉमस अक्वाइनस जो सन्त अन्सेल्म के समकालीन है, की आलोचना का उल्लेख करते है। यद्यपि यह स्वीकृत है कि प्रत्येक व्यक्ति 'ईश्वर' शब्द का यह अर्थ समझता है कि—'वह जिससे महान का विचार न किया जा सके', फिर भी यह इसलिए उसका अनुसरण नही करता कि वह विचार करता है कि ईश्वर शब्द से जो सूचित होता है कि वह वास्तविक अस्तित्व है, अपितु केवल वह है जो मानसिक रूप से अस्तित्ववान है। न तो यह तर्क किया जा सकता है कि इसका वास्तविक अस्तित्व है और न ही यह कहा जा सकता है कि ऐसी किसी सत्ता का अस्तित्व है जिससे महान, का विचार नही किया जा सकता और न ही ठीक ढग से यह कहा जा सकता है ईश्वर का अस्तित्व नही है, जो ऐसा मानते है—

"Yet granted that everyone understands that by this word "God" is signified something than which nothing greater can be thoughat, nevertheless, it does not therefore follow that he understands that what the word signifies exists actually, but only that it exists mentally Nor can it be argued that it actually, exists unless it be admitted that there actually exists something than which nothing greater can be thoughat and this precisely is not admitted by those who hold that God does not exists "[1]

अभी तक हमने सन्त अन्सेल्म के सत्तामूलक प्रमाण की आलोचनाओ पर विचार किया। अब डेकार्ट के सत्तामूलक प्रमाण

---

1 फ्राम द २,१ ।। थियोलाजिका' ट्रासले० बाई द फादर्स ऑफ द इगलिश डोमिनिकन प्राविन्स। रीप्रिन्टेड इन द आन्टोलाजिकल आरगुमेन्ट द्वारा प्रकाशित एल्विन प्लान्टिग पृष्ठ–29

अब हम सन्त थॉमस अक्वाइनस जो सन्त अन्सेल्म के समकालीन है, की आलोचना का उल्लेख करते है। यद्यपि यह स्वीकृत है कि प्रत्येक व्यक्ति 'ईश्वर' शब्द का यह अर्थ समझता है कि—'वह जिससे महान का विचार न किया जा सके', फिर भी यह इसलिए उसका अनुसरण नही करता कि वह विचार करता है कि ईश्वर शब्द से जो सूचित होता है कि वह वास्तविक अस्तित्व है, अपितु केवल वह है जो मानसिक रूप से अस्तित्ववान है। न तो यह तर्क किया जा सकता है कि इसका वास्तविक अस्तित्व है और न ही यह कहा जा सकता है कि ऐसी किसी सत्ता का अस्तित्व है जिससे महान, का विचार नही किया जा सकता और न ही ठीक ढग से यह कहा जा सकता है ईश्वर का अस्तित्व नही है, जो ऐसा मानते है—

"Yet granted that everyone understands that by this word "God" is signified something than which nothing greater can be thoughat, nevertheless, it does not therefore follow that he understands that what the word signifies exists actually, but only that it exists mentally Nor can it be argued that it actually, exists unless it be admitted that there actually exists something than which nothing greater can be thoughat and this precisely is not admitted by those who hold that God does not exists "[1]

अभी तक हमने सन्त अन्सेल्म के सत्तामूलक प्रमाण की आलोचनाओ पर विचार किया। अब डेकार्ट के सत्तामूलक प्रमाण

---

1 प्रा॰ग द २॰ा थियोलाजिका ट्रासले॰ बाई द फादर्स ऑफ द इगलिश डोमिनिकान प्राविन्स। रीप्रिन्टेड इन 'द आन्टोलाजिक॰ । आरगुमेन्ट' द्वारा प्रकाशित एल्विन प्लान्टिग पृष्ठ—29

की कुछ प्रमुख आपत्तियो पर विचार करना उचित होगा। कैटेरस (Caterus) और पायरे गैसेन्डी (Pierre Gassendi) दोनो देकार्त्त के समकालीन थे। दोनो ने देकार्त्त के तर्क पर आपत्तियॉ उठाई है। कैटेरस कहता है कि यद्यपि यह मान्य है कि एक सर्वोच्च पूर्ण सत्ता अपने नाम से ही अस्तित्व को धारण करती है। यद्यपि यह अस्तित्व इसका अनुसरण नही करता कि वह किसी वस्तु विशेष की तरह वास्तविक ससार मे अस्तित्ववान है, लेकिन कम से कम अस्तित्व की अवधारणा अवियोज्य (inseparably) रूप से सर्वोच्च सत्ता की अवधारणा से सयुक्त है। कैटेरस के अनुसार यद्यपि हमारे पास सर्वोच्च सत्ता का विशिष्ट ज्ञान है और अपेक्षित है कि एक परमपूर्ण सत्ता अपने सार (essence) की अवधारणा मे ही अस्तित्व का धारण करती है, फिर भी यह इसका अनुसरण नही करता कि इसका कही वास्तिविक अस्तित्व है और न ही यह कल्पना की जा सकती है कि वह सर्वोच्च सत्ता अस्तित्व मे है।

सचमुच, देकार्त्त का तर्क प्रारम्भ मे बडा महत्पूर्ण माना जाता था कि अस्तित्व एक गुण है। इस अनुमान को उसके समकालीन दार्शनिक पायरे गैसेन्डी द्वारा चुनौती मिली, जिसने घोषणा किया कि—"अस्तित्व न तो ईश्वर मे न ही किसी अन्य वस्तु मे पूर्णता का सूचक है, इसके अतिरिक्त यह वह है जिसकी अनुपस्थिति मे कोई पूर्णता सम्भव नही है।"

(Existence is a perfection, neither in God nor in anything else it is rather that in the absence of which there is no perfection)[1] वह (पायरे गैसेन्डी) आगे कहता है—"This must

1 मेडिटेशन्स V ट्रासले () हैडेन एण्ड रॉस (Haldane and Ross) दि फिलासाफिकल वर्क्स आफ डेसार्टस II P 186

be so if, indeed, that which does not has exists neither perfection nor imperfection, and That which exists and has various perfections, does not have its existence as a particular perfection and as one of the number of its perfections, but as that by means of which the thing itself equally with its perfections is in existence, and without which neither can it be said to possess perfections, nor can perfections be said to be posessed by it Hence, neither is existence held to exist in a thing in the way that way that perfection do, nor if the thing lacks existence is it said to be in perfect (or deprived of a perfection), so much as to be nothing [1]

कैटेरस और पायरे गैसेण्डी के लिए देकार्त्त का उत्तर भी गौनीलो के प्रति सन्त अन्सेल्म के उत्तर की तरह सन्तोषजनक नही है।

इमैनुअल कांट

प्रत्ययसत्ता युक्ति की कान्ट द्वारा की गई आलोचना के दो स्तर या स्थितियॉ है। प्रथम स्थिति मे काट अन्तरिम रूप से यह स्वीकार करके चलता है कि अस्तित्व का प्रत्यय ईश्वर या पूर्णातिपूर्ण तत्व के प्रत्यय मे अन्तर्निहित है और विश्लेषण के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। यह उसी प्रकार से है जैसे तीन कोणो का होना त्रिभुज के प्रत्यय मे अन्तर्निहित है। इन दृष्टातो मे जब हम यह कहते है कि ईश्वर का अस्तित्व है या

[1] मेद्रिटेटान्स ट्रासले० हैडेन एण्ड रॉस (Holdane and Ross) दि फिलॉसाफिकल वर्क्स ऑफ डेकार्ट II पृष्ठ–186–186

त्रिभुज मे तीन कोण है तो इन तर्क वाक्यो मे उद्देश्य और विधेय मे एक तरह का अनिवार्य सम्बन्ध है और तार्किक दृष्टि से यह सम्भव नही है कि आप उद्देश्य को तो माने विधेय को न माने। इसलिए यदि हम कहते है कि कोई वस्तु त्रिभुज है लेकिन उसके तीन कोण नही है तो यह आत्मविरोधी कथन होगा। उसी तरह यदि हम कहे कि एक वस्तु पूर्णातिपूर्ण तत्त्व है लेकिन उसमे अस्तित्व नही है तो यह भी आत्मविरोधी कथन होगा। लेकिन कान्ट का कहना था कि यह आत्मविरोध तभी उत्पन्न होता है जबकि उद्देश्य को मानकर विधेय को न माना जाय। यदि उद्देश्य और विधेय दोनो एक साथ अस्वीकार कर दिये जॉय तो कोई आत्मविरोध नही पैदा होगा। त्रिभुज को मानकर तीन कोणो को न मानना आत्मविरोधी है लेकिन त्रिभुज और तीन कोण एक साथ अस्वीकार करना किसी आत्मविरोधी स्थिति को उत्पन्न नही करता। यही बात ईश्वर के प्रत्यय पर भी लागू होती है। यदि हम ईश्वर और पूर्णातिपूर्ण तत्व को माने और फिर उसके अस्तित्व से इन्कार करे यह तार्किक दृष्टि से सम्भव नही है। लेकिन ईश्वर और उसके अस्तित्व को एक साथ अस्वीकार करने मे कोई तार्किक दोष नही उत्पन्न होता। जिस तरह से हम बिना किसी आत्मविरोध के यह कह सकते है कि न त्रिभुज है और न उसके तीन कोण, उसी तरह समान रूप से हम यह भी कह सकते है कि न ईश्वर है और न उसका अस्तित्व। ईश्वर के विचार मे चाहे अस्तित्व का विचार निहित हो लेकिन उससे ईश्वर का वास्तविक अस्तित्व सिद्ध नही होता। काट के शब्दो मे —

"If, in an identidal proposition, I reject the predicate while retaining the subject, contradiction results, and I therefore say that the former belongs necessarily to the latter But if we reject subject and predicate alike, there is no contradiction, for nothing is then, left that can be contradicted To posit a triangle, and yet to reject its three anglels, is selfcontoadictory, but there is no contradiction in rejecting the triangle together with its three angles The same holds true of the concept of and obsolutely necessory being If its existence is rejected, we reject the thing itself with all its predicates, and no question of contradication can there arise "[1]

प्रत्ययसत्ता युक्ति अथवा सत्तामूलक प्रमाण की अपनी आलोचना के और अधिक गहरे, दूसरे स्तर पर काट इस युक्ति मे देकार्त्त की इस मूलभूत मान्यता को ही अस्वीकार कर देता है कि अस्तित्व का प्रत्यय ईश्वर के प्रत्यय मे अन्तर्निहित है या उससे विश्लेषणात्मक ढग से जुडा है। काट यह स्पष्ट रूप से कहता है कि 'अस्तित्त्व' कोई गुण या किसी प्रकार की पूर्णता नही है जो किसी वस्तु मे उपस्थित या अनुपस्थित हो। अस्तित्त्व का विचार या प्रत्यय किसी वस्तु के प्रत्यय मे कुछ जोडता नही है। जब हम किसी वस्तु पर एक–एक करके विभिन्न गुण आरोपित करते है तो उससे उस वस्तु के प्रत्यय मे बृद्धि करते है, लेकिन जब हम यह कहते है कि वह वस्तु है या उसका अस्तित्व है तो उससे उस वस्तु के प्रत्यय मे कोई विस्तार नही

[1] फाम 'द क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन ट्रास नॉर्मन केम्प स्मिथ रीप्रिन्टेड इन द आन्टोलॉजिकल आरगुमेन्ट' द्वारा प्रकाशित एल्विन प्लन्टिगा पृ0–59

होता, बल्कि हमारे कथन का यह अर्थ होता है कि विभिन्न गुणो से युक्त जिस वस्तु का हमने प्रत्यय बनाया है उस प्रत्यय के अनुरूप वास्तविकता मे भी वह वस्तु है। अर्थात् अस्तित्व के कथन मे हम केवल अपने प्रत्यय के विषय मे प्रयुक्त होने की बात करते है, स्वय उस प्रत्यय मे कोई परिवर्तन नही करते। इसीलिए काट के अनुसार अस्तित्व का कथन सदैव सश्लेषणात्मक होता है, विश्लेषणात्मक नही। अर्थात् कभी किसी वस्तु के प्रत्यय का विश्लेषण करके उसमे से उस वस्तु के अस्तित्व को नही निकाला जा सकता। जब हम ईश्वर या पूर्णातिपूर्ण तत्व का प्रत्यय बनाते है तो हम एक ऐसे तत्व की कल्पना करते है, जिसमे सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, आदि अनेक गुण या पूर्णताए है। लेकिन जब हम यह कहते है कि ईश्वर का अस्तित्व है तो इससे हम अपने ईश्वर की अपनी कल्पना मे किसी गुण या पूर्णता का योग नही करते, बल्कि यह कहते है कि जिन तमाम गुणो या पूर्णताओ से युक्त हमने ईश्वर की कल्पना की है वह मात्र कल्पना नही, वास्तविकता भी है। अत मात्र प्रत्यय के विश्लेषण से ईश्वर की सत्ता सिद्ध नही की जा सकती। काट के शब्दो मे—

"Otherwise, it would not be exactly the same thing that exists, but something more that we had thoughat in the concept, and we could not, therefore, say that the exact object of my concept exists If we think in a thing every feature of reality except one, the missing reality is not added by my saying that this defective thing exists On the contrary, it exists with the same defect with which I have thoughat it, since otherwise what exists would be something

different from what I thoughat When, therefore, I think a being as the supreme reality, without any defect, the question still remains whether it exists or not [1]"

दार्शनिक जी० ई० मूर के अनुसार भी 'अस्तित्व' शब्द का तार्किक दृष्टि से इन शब्दो से भिन्न कार्य है जो गुणो को दर्शाते है, जैसे कि लाल, हरा, तीन भुजाओ का होना, सर्वशक्तिमान आदि। उदाहरण के लिए "गुर्राना शेरो का गुण है" और यह कहना कि 'पालतू शेर गुर्राते है'—पालतू शेरो का एक वर्णन करना है, लेकिन यह कहना कि "पालतू शेरो का अस्तित्व है"—पालतू शेरो का कोई वर्णन करना नही है, बल्कि यह कहना है कि पालतू शेर है। अपनी बात की पुष्टि के लिए मूर महोदय यह दृष्टात देते है कि यह वाक्य "कुछ पालतू शेर गुर्राते नही है" अर्थपूर्ण है, जबकि वाक्य "कुछ पालतू शेरो का अस्तित्व नही है," का कोई स्पष्ट अर्थ नही है। इसी से साफ जाहिर है कि "अस्तित्व" शब्द को गुण के द्योतक शब्दो के समान नही प्रयुक्त किया जा सकता। प्रत्ययसत्ता युक्ति की मूलभूत त्रुटि यही है कि यह अस्तित्व के कथन को एक गुण का आरोपण समझ बैठता है, जबकि ईश्वर के अस्तित्व की बात कहने मे हमारा आशय केवल यह होता है कि ईश्वर के प्रत्यय का वास्तविकता मे उदाहरण उपस्थित है। अस्तित्व शब्द के सयोग के द्वारा हम शुद्ध प्रत्ययो के ससार से सीधे बाहर निकल जाते है, और इसीलिए ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करने पर कोई आत्मविरोध नही उत्पन्न हो सकता। मूर ने 'अस्तित्व' सम्बन्धी अपने विचारो

1 इमैन्युअल काट क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन नॉर्मन केम्प स्मिथ रीप्रिन्टेड इन द एक्जिस्टेन्स ऑफ गॉड एडि० जॉन हिक पृष्ठ—45

को अपनी पुस्तक 'इज एक्जिस्टेन्स ए प्रेडिकेट' मे इस प्रकार व्यक्त किया है –

"I think this can be made clear by comparing the expressions "Some tame tigers don't growl" and "Some tame tigers don't exist" The former, whether true or false has a perfectly clear meaning-a meaning just as clear as that of 'Some tame tigers do growl" and it is perfectly clear that both propositions might be true together But with "Some tame tigers don't exist" the case is different "Some tame tigers exist" has a perfectly clear meaning it just means "There are some tame tigers" But the meaning of "some tame tigers don't exist" if any is certainly not equally clear It is another queer and puzzling expression Has it any meaning at all? and it so, what meaning? If it has any, it would appear that it must mean that same as " There are some tame tigers which don't exist" But has this any meaning? And if so, what? Is it possible that there should be any tame tigers, which don't exist? I think the answere is that, if in the sentence " Some tame tigers don't exist" You are using " exist" with the same meaning as in "Some tame tigers exist", then the former sentence as a whole has no meaning at all-it is pure nonsense "[1]

बीरावी शताब्दी मे काट की ही बात को अधिक स्पष्ट ढग से कहने का एक प्रयत्न बर्ट्रेन्ड रसेल द्वारा किया गया है जिसे

1 जी०ई० मूर "इज एक्जिस्टेन्स ए प्रेडिकेट 'द आन्टोलॉजिकल–आरगुमेन्ट" द्वारा प्रकाशित ऐल्विन प्लान्टिग पृष्ठ 75–76

उन्होने अपने 'वर्णन सिद्धान्त'[1] मे स्पष्ट किया है। रसेल ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि यद्यपि हम 'अस्तित्व' शब्द को व्याकरण की दृष्टि से एक विधेय के रूप मे प्रयुक्त करते है लेकिन तार्किक दृष्टि से किसी वाक्य मे इस शब्द का नितान्त भिन्न कार्य है। ''कुत्ता अस्तित्ववान है'' और 'कुत्ता मासाहारी है'' इन दोनो वाक्यो का व्याकरणीय रूप समान है और इसीलिए हम समझ लेते है कि जिस तरह दूसरे वाक्य मे ''मासाहारी'' कुत्ते के गुण का द्योतक है, उसी प्रकार पहले वाक्य मे भी 'अस्तित्ववान' उनके गुण का विवरण करता है। लेकिन यह मात्र भ्रम है। रसेल के अनुसार 'कुत्ता अस्तित्ववान है' या कुत्ते का अस्तित्व है' का सही अर्थ—' ऐसे 'म' है, जिनके बारे मे यह कहना कि 'म' कुत्ते मे है सत्य है।'' अस्तित्ववाचक वाक्यो के इस विश्लेषण या अनुवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कहना कि 'कुत्ते का अस्तित्व है' कुत्ते पर कोई गुण आरोपित नही करता है बल्कि यह कहना है कि ऐसी वस्तुए रासार मे है जिनके लिए 'कुत्ता' शब्द मे निहित विवरण लागू होते है। इसी तरह से 'परियो' का अस्तित्व नही है।'' का अर्थ है कि ऐसे कोई म नही है जिनके बारे मे यह कहना कि म परी है सत्य है। इसके विपरीत यदि हम उपर्युक्त वाक्य का यह अर्थ लगाए कि ''परी'' नामक वस्तुओ के पास अस्तित्व होने का गुण नही है तो हम इस गम्भीर समस्या मे पड जाते है कि फिर आखिर इन 'परी' नामक वस्तुओ की रात्तात्मक स्थिति क्या है, क्योकि एक अर्थ मे वे कुछ है क्योकि हम उनके बारे मे कुछ कह रहे है, लेकिन दूसरी ओर हम उनके अस्तित्व से इन्कार भी कर रहे है। रसेल द्वारा दिये गये विश्लेषण से इस समस्या का समाधान हो जाता है। उसके

1 वर्णन सिद्धात का यह रूप बर्टेन्ड रसेल के हिस्ट्री ऑफ बेस्टर्न फिलॉसफी (लदन, जार्ज एलेन एण्ड अनविन लिमि० 1946) पृष्ठ 59–60 से लिया गया है।

अनुसार 'कुत्ते का अस्तित्व है' और 'परियो' का अस्तित्व नही है' इन वाक्यो मे हम 'कुत्ता' या 'परी' नामक वस्तुओ के बारे मे कुछ नही कह रहे है बल्कि कुत्ता और 'परी' नामक प्रत्ययो की चर्चा कर रहे है और यह कह रहे है कि प्रथम प्रत्यय के विषय मे दृष्टात है, लेकिन दूसरे प्रत्यय के नही हैं।

''ए माडर्न इन्ट्रोडक्शन टु फिलॉसफी' मे **पॉल एडवर्ड्स** (Paul Edwards) द्वारा 'अस्तित्व' के विश्लेषण सम्बन्धी विचार को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

"Suppose I am on exploier and claim to have discovcred a new species of animal which I call "gangle", I have been asked go explain what I mean by calling an animal a "gangle" and I have given this answer "By a gangle I mean a mammal with elven noses, seven blue syes, bristily hair, sharp tccth and wheels in the place of fect" Let us now contrast two supplimentory remarks I might make The first time i add, "furthermore dgangle has three long tails" The second time I add "furthermore, let me insist that gangles exist" It is evident that these are two radically different additions In the first case I was adding to the definition of "gangle", I was enlarging the concept, I was mentioning a further poperty which a thing must possess before I would call it a "gangle" The second time I was doing something quite different I was not enlarging the concept of gangle I was saying that there is something to which the concept applies, that the combination of Characteristics or qualities previously mentioned belong to something [1]"

---

[1] इन्ट्रोक्शन बाइ पाल एडवर्डस इन द बुक ''ए माडर्न इन्ट्रोडक्शन टु फिलॉसफी' द्वारा प्रकाशित पॉल एडवर्डस पृष्ठ–375

द्वितीय रूप

सत्तामूलक प्रमाण के दूसरे रूप मे दार्शनिक लोग ईश्वर के अस्तित्व को 'अनिवार्य अस्तित्व' के विचार की अवधारणा के आधार पर स्थापित करने का प्रयास करते है। ईश्वर केवल अस्तित्ववान नही है, अपितु वह अनिवार्यत अस्तित्ववान है। उसका अस्तित्व अनिवार्य है। यह महान प्रयास सर्वप्रथम सन्त अन्सेल्म द्वारा किया गया। वह ईश्वर के अनिवार्य अस्तित्व को इस प्रकार से स्थापित करने का प्रयास करते है—

सर्वप्रथम सन्त अन्सेल्म ईश्वर को इस प्रकार परिभाषित करते है "वह जिससे महत्तर की कल्पना न की जा सके।" और ईश्वर की इस परिभाषा से वह यह निष्कर्ष निकालते है कि ईश्वर अनिवार्य रूप से अस्तित्ववान है। उसका अस्तित्व अनिवार्य है। सन्त अन्सेल्म के अनुसार हम एक ऐसी सत्ता की कल्पना कर राकते है जिसके अनस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती। और हम एक ऐसी सत्ता की भी कल्पना कर सकते है जिसके अनास्तित्त्व की कल्पना की जा सकती है। निश्चित रूप से एक वस्तु जिसके अनस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती, उस वस्तु से अधिक महान् है जिसके अनस्तित्व की कल्पना की जा सकती है। और सन्त अन्सेल्म ने ईश्वर को परिभाषित किया है कि 'वह जिससे महान् की कल्पना न की जा सके'। इसलिए ईश्वर वह है जिसके अनस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती। अन्यथा इससे एक आत्मव्याघात पैदा हो जायेगा। यदि ईश्वर, जिससे महत्तर की कल्पना नही की जा सकती, के अनस्तित्व की कल्पना की सकती है तो यह ईश्वर वह ईश्वर नही होगा

जिससे महत्तर की कल्पना नही की जा सकती। (क्योकि एक वस्तु जिसके अनरितत्त्व की कल्पना नही की जा सकती उस वस्तु से महत्तर है जिसके अनस्तित्व की कल्पना की जा सकती है)। चूँकि अस्तित्व रहित ईश्वर की कल्पना व्याघाती (Contracdiction) है। इसलिए ईश्वर अनिवार्यत अस्तित्ववान है। उसका अरितत्व अनिवार्य है। सन्त अन्सेल्म अपने दी आन्टोलॉजिकल आरगुमेन्ट' मे अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करते है –

"And it assuiedly exists so truly, that it connot be conceived not to exist For it is possible to conceeive of a being which cannot be concevied not to exist, and this is greatei than one which can be conceived not to exist Hence, if that than which nothing greater can be conceived, can be conceived not to exist, it is not that, than which nothing greater can be conceived But this is an irreconceilable contiadiction There is then, so tiuly a beeing than which nothing greatei can be conceeived to exist, that it cannot-even be conceived not to exist, and this thou art, O hord, our God "[1]

बीसवी शताब्दी के एक और विचारक नॉरमन मॉल्काम (1911) ने अन्सेल्म के तर्क को विस्तारित करते हुए बतलाया कि ''ईश्वर वह है जिससे महान् की कल्पना नहीं की जा सकती'' और ईश्वर की इसी परिभाषा से मॉल्काम इस निष्कर्ष पर पहुँचते
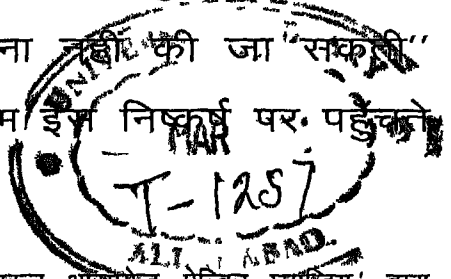
[1] रान्त अनलेल्म्स आनटोलाजिकल आरगुमेन्ट द आन्टोलाजिकल आरगुमेन्ट ऐल्विन प्लान्टिग' द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ–5

है कि ईश्वर आवश्यक रूप से अस्तित्ववान है, उसका अस्तित्व आवश्यक है।

मॉल्काम (Malcolm) अपने तर्क मे इस विचार का सहयोग नही लेते कि अस्तित्व एक गुण है। लेकिन उनके अनुसार "अनिवार्य अस्तित्व" निश्चित रूप से एक पूर्णता है और उसे गुण कहा जा सकता है। मॉल्काम 'अनस्तित्व की तार्किक असभाव्यता' (the logical impossibility of Non-existence) को पूर्णता के रूप मे स्थापित करने का प्रयास करता है। यहाँ अस्तित्व के दो रूप है–

(1) अनिवार्य (Necessory) और

(2) आकस्मिक (Conıngent)

अनिवार्य अस्तित्व एक पूर्णता है। इसे और स्पष्ट करने के लिए मॉल्काम सन्त अन्सेल्म से सहमत है कि ईश्वर वह है जिससे महान् की कल्पना नही की जा सकती। ईश्वर के अनिवार्य अरितत्व को सिद्ध करने के लिए सन्त अन्सेल्म इस वाक्य का प्रयोग करते है–

"A thing which can not be conceived as not existing is greatei than a thing which can be coneived as not existing " अर्थात् एक वस्तु जिसके अनस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती है, उस वस्तु से अधिक महान है जिसके अनस्तित्व की कल्पना की जा सकती है।लेकिन मॉल्काम ने इस विचार को नये ढग से व्यक्त किया है–

"A thing which exists necessarily is greater than a thing which does not exists necessarily or exists contingetly" अर्थात् एक वस्तु जो अनिवार्य रूप से अस्तित्ववान है उस वस्तु से अधिक महान् है जो अनिवार्य रूप से अस्तित्ववान नही है अथवा आकस्मिक रूप से अस्तित्ववान है। ईश्वर वह है जिससे अधिक महान की कल्पना नही की जा सकती इसलिए ईश्वर को अनिवार्यत अस्तित्ववान होना चाहिए। ईश्वर अनिवार्यत अस्तित्त्ववान है, अन्यथा ईश्वर वह नही होगा जिससे किसी महान् की कल्पना नही की सकती (क्योकि जो वस्तु अनिवार्यत अव्तित्ववान है, वह उस वस्तु से अधिक महान है जो अनिवार्यत अस्तित्ववान नही है अथवा आकस्मिक रूप से अस्तित्ववान है)। इस प्रकार ईश्वर का अनिवार्य अस्तित्व अनिवार्यत उसकी परिभाषा से निगमित होता है कि ईश्वर वह है जिससे महान् की कल्पना नही की जा सकती। अत मॉल्काम के अनुसार हमे यह कहना चाहिए कि ईश्वर अनिवार्यत अस्तित्ववान है अथवा केवल यह कहने के बजाय कि ईश्वर का अस्तित्व है यह कहना चाहिए कि ईश्वर का अस्तित्व अनिवार्य है।

मॉल्काम के शब्दो मे –

"It may be helpful to express ourselves in the following way to say, not that omnipotence is a property of God, but rather that *necessary omnipotence is* and to say not that omniscience is a property of God, but rather that *necesasory omnipotence is*------------Necessary existence is a property of God in the same sence that necessory omnipotence and necessary omniscience are his properties And we are not to think that "God necessarily exists" means that it follows necessarily from somthing that God exists contingently The

a priori proposition "God necessarily exists" entails the proposition "God exists" if and only if the latter also is understood as an a priori Proposition in which case the two propositions are equivalent "[1]

मॉल्काम आगे तर्क करता है कि यदि ईश्वर का अस्तित्व नही है तो उसका अस्तित्व तार्किक रूप से असम्भव है क्योकि ईश्वर उस सन्दर्भ मे न तो है और न कभी अस्तित्व मे होगा। यह ईश्वर के इस विचार से निगमित होता है कि वह पूर्णत स्वतन्त्र है। सभी वस्तुए जो अस्तित्व मे है, वे अन्य वस्तुओ पर आश्रित है, जो उनके अस्तित्व मे आने और हमेशा अस्तित्ववान रहने मे मद्द करती है। बहुत सी वस्तुए अपने अस्तित्व के लिए दूसरी वस्तुओ अथवा घटनाओ पर आश्रित रहती है। जैसे–मेरी घडी एक घडीसाज या इन्जीनियर द्वारा बनी हुई है। इसका अस्तित्व मे आना कुछ निश्चित रचनाकारो के कार्यो पर आधारित है। इसका अतत् अस्तित्व (continued existence) बहुत सी वस्तुओ पर आधारित है जैसे पानी मे गिरने से खराब न होना, जमीन पर गिरने पर कोई गडबडी न आना आदि। प्रत्येक वस्तु जो अस्तित्व मे है, उसका अस्तित्व मे आना और लगातार अस्तित्व मे बने रहना दोनो अन्य वस्तुओ पर आधारित है। जबकि ईश्वर स्वतन्त्र सत्ता है, और इसीलिए यदि ईश्वर का अस्तित्व नही है तो वह न तो अस्तित्व मे है और न ही कभी अस्तित्वान होगा। लेकिन, यदि ईश्वर का अस्तित्व है तो उसका अस्तित्त्व तार्किक रूप से अनिवार्य है क्याकि ईश्वर न तो कभी

---

1 मॉल्काम्स असेलास आनटोलॉजिकल आरगुमेन्ट फिलॉसाफिकल रिव्यू LXIX, री–प्रिन्टेड इन 'द आनटोलॉजिकल आरगुमेन्ट द्वारा प्रकाशित ऐल्विन प्लान्टिग पृष्ठ–146–147

अस्तित्व से रहित रहा है और न कभी होगा। ईश्वर को कोई भी वस्तु अस्तित्ववान होने से रोक नही सकती। वह असीमित है चूकि ईश्वर स्वतन्त्र है इसलिए वह असीमित है। सभी आश्रित वस्तुए उन वस्तुओ द्वारा सीमित है जिन पर वे आश्रित है। लेकिन ईश्वर स्वतन्त्र है। इसीलिए ईश्वर असीमित है, और इसीलिए ईश्वर न तो अस्तित्वरहित है और न कभी अस्तित्वरहित होगा। इस प्रकार या तो ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप से असम्भव है अथवा यह तार्किक रूप से अनिवार्य है। ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप से असम्भव तभी होगा जब ईश्वर का विचार आत्मव्याघाती हो। लेकिन चूकि ईश्वर का विचार आत्मव्याघाती नही है, इसलिए ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप से अनिवार्य है। मॉल्काम के शब्दो मे—

"Let me summarise the proof If God, a being a greater than which cannot be conceived, does not exist than He cannot come into existennce For if He did He would either have been caused to come into existence or have happened to come into existence and in either case He would be a limited being, which by our conception of Him He is not Since he cannot come into existence, if He does not exist His existence is impossible, If He does exist He cannot have come into existence (for the reasons given), nor can he cease to exist, for nothing could cause Him to cease to exist nor could it just happen that He ceased to exist So if God exists His existence is neceessory Thus God's existence is either impossible or necessory It can be the former only if the concept of such a being is self-cantiaditory on in some way logicaially absurd Assuming that this is not so, it follows that He necessarily exist [1]"

---

1 पूर्वोवत–पृष्ठ–146

आलोचना

सत्तामूलक प्रमाण को पुनर्व्यवस्थित करने की मॉल्काम के प्रयास की ऐल्विन प्लान्टिग (Alvin Planting) द्वारा तीव्र आलोचना की गई है। प्लान्टिग का विचार है कि "यह सत्य है कि ईश्वर न अस्तित्व मे है और न कभी अस्तित्व मे होगा," इससे हम यह निष्कर्ष नही निकाल सकते कि "यदि ईश्वर अस्तित्ववान नही है तो उसका अस्तित्व तार्किक रूप से असम्भव है", अथवा "यह अनिवार्यत सत्य है कि ईश्वर का अस्तित्व नही है" (जिसे मॉल्काम ने भूलवश स्वीकार कर लिया है)। इससे जो निगमित होता है वह यह है कि "ईश्वर कभी अस्तित्त्ववान नही होगा।" पुन मॉलकाम द्वारा यह निष्कर्ष निकालने मे एक भूल है कि—"यह अनिवार्यत सत्य है कि ईश्वर का अस्तित्व नही है" अथवा "ईश्वर का अस्तित्व तार्किक अनिवार्यता है। इस कथन से निगमित होता है कि यह अनिवार्यत सत्य है कि ईश्वर न तो कभी अस्तित्व मे था और न कभी होगा एव न कभी अस्तित्व रहित था और न कभी होगा।" इससे जो निगमित होता है वह यह है कि "ईश्वर हमेशा अस्तित्व मे था और हमेशा रहेगा।"

चूकि ईश्वर अस्तित्ववान है" से यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि 'ईश्वर अनिवार्यत अस्तित्ववान है" और 'ईश्वर अस्तित्ववान नही है" से यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि 'ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप से असम्भव है" इसलिए हम यह नही कह सकते कि "या तो ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप से सम्भव है अथवा असम्भव है और चूकि ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप से असम्भव नही है अथवा ईश्वर की

अवधारणा आत्मव्याघाती नही है, इसलिए ईश्वर अनिवार्यत अस्तित्ववान है।'

जॉनहिक ने अपनी पुस्तक 'Arguments for the Existence fo God" मे कहते है कि मॉल्काम का तर्क ईश्वर के अस्तित्व की तार्किक अनिवार्यता अथवा तार्किक असम्भावना की परिस्थितियो की उपेक्षा करता है। दोनो केवल सापेक्षिक (Hypothetical) अनिवार्यताए है। यद्यपि यह सत्य है कि यदि ईश्वर अस्तित्ववान है तो उसके लिए यह तार्किक रूप से असम्भव है कि उसका अस्तित्व न हो और यदि वह अस्तित्ववान नही है तो उसका अस्तित्व मे होना तार्किक रूप से असम्भव है। लेकिन हम इससे यह निष्कर्ष नही निकाल सकते कि ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप से अनिवार्य है। यदि ईश्वर अस्तित्ववान है तो यह तार्किक रूप से असम्भव है कि ईश्वर अनिवार्यत अस्तित्ववान नही है। लेकिन ईश्वर का न होना तार्किक रूप से असम्भव है।

प्रो० पॉल हेन्ले (Paul Henle) सत्तामूलक प्रमाण के दूसरे प्रकार के आधार को अस्वीकार करते है कि—अस्तित्व दो प्रकार का होता है कि—(1) अनिवार्य और (2) आकस्मिक। प्रो० पॉल हेन्ले का कथन है कि जब हम ईश्वर के अनिवार्य अस्तित्व की बात करते है तो यहॉ हम सामान्यत ईश्वर के अस्तित्व की ही विवेचना करते है। इसका अर्थ यह नही है कि यहॉ दो प्रकार का अस्तित्व है—अनिवार्य और आकस्मिक। उनका कथन है—

"This adjectival use of "necessary" is of course common as when one says "Tom" would be a good scholar if he had the necessary patience" In this case However the

term is relative and one can properly ask for what it is necessary The necessary patience is simply the patience which is required if one is to be a scholar It is not that there are two sorts of patience, ordinary patience and necessary patience, and however, patient Tom may be in the ordinary sense however steadfast, pertinacious and unswerving in the pursut of a goal he can never become a scholar because he locks this special virtue of necessary patience "[1]

जैसा कि उपरोक्त परिच्छेद मे जब हम अनिवार्य धैर्य (necessary patience) शब्द का प्रयोग करते है तो तात्पर्य यह है कि एक अच्छे विद्यार्थी के लिए धैर्य (patience) आवश्यक या अनिवार्य है। इसी प्रकार जब हम "अनिवार्य अस्तित्व" की बात करते है तो इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर के होने के लिए अस्तित्व आवश्यक या अनिवार्य है।

वास्तव मे अस्तित्व के दो प्रकारो की बात केवल उपस्थित वस्तुओ के विषय मे ही लागू किया जा सकता है जिन वस्तुओ का अस्तित्व केवल प्रश्न परक या विचार परक ही है उन पर इन प्रकारो की बात लागू नही होती। इस प्रकार हम देखते है कि ईश्वर के अस्तित्व को सन्तामूलक प्रमाण के न तो प्रथम रूप से और न ही द्वितीय रूप से प्रमाणित कर सकते है। वास्तव मे यह स्पष्ट है कि हम किसी भी वस्तु का अस्तित्व केवल उसके विचार के आधार पर प्रमाणित नही कर सकते।

---

1 कैन गॉडस एविजस्टेन्स बी डिस्पूब्ड ? बाइ जे0 एन0 फिन्डले रीप्रिन्टेड इन द आन्टोलाजिकल अरगूमेन्ट द्वारा प्रकाशित एल्विन प्लान्टिग पृष्ठ 120

जे० एन० फिन्डले (J.N Findlay 1903)

सत्ता मूलक प्रमाण दार्शनिको द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए प्रयोग किया गया है लेकिन बीसवी शदी के एक महान दार्शनिक जे०एन० फिन्डले इसी प्रमाण के आधार पर एक तर्क प्रस्तुत करते है जिसके द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित न करके उसके अनस्तित्व को प्रमाणित करते है। सन्त अन्सेल्म ईश्वर के विचार के आधार पर उसके अस्तित्व का दावा करते है। लेकिन फिन्डले सन्त अन्सेल्म के विपरीत, अपने अन्दर उसी (ईश्वर के) विचार के आधार पर ईश्वर के अनस्तित्व को सिद्ध करने का दावा करते है। फिन्डले का सत्तामूलक प्रमाण सन्त अन्सेल्म की तरह एक प्रकिया को स्वीकार करता है जिसके द्वारा ईश्वर के अनस्तित्व को सिद्ध करता है। फिन्डले का कथन है—

"It was indeed an ill day for Anselm when he hit upon his famous proof For on that day he not only laid bare something that is of the essence of an adequate religious object, but also something that entails its necessary non existence "

अब यह विचारणीय है कि फिन्डले किस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुवते है कि सन्त अन्सेल्म के सत्तामूलक प्रमाण की प्रकिया द्वारा ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नही किया जा सकता। फिन्डले दो आधारो के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि ईश्वर का अस्तित्व नही है। प्रथम आधार के रूप मे फिन्डले के कुछ

उद्धरणो का उल्लेख किया जा सकता है–फिन्डले ईश्वर को इस रूप मे स्वीकार करता है–

"Adequate object of religious *attitudes*[1]" as St Anselm had taken By religious attitude, he means that in which we tended to abase ourselves before some object, to defer to it wholly, to devote ourselves to it with unquestioning enthusiasms, to bend the knee before it, whether literally or *metaphorically*[2]" "religious attitudes presume *superiority* in their objects, and such superiority, morever, as reducess us, who feel the attitudes, to comparative nothingness"[3]

"Such a attitude can only be fitting where the object reverenced *exceeds*" us very vastly whether in power or wisdom or in other valued qualities[4] "And hence we are led on irresistibly to demand that our religious object shoud have an unsurpassable supermacy along all avenves that it should tower infinitely above all other objects"[5]

इस प्रकार फिन्डले अपने तर्क के प्रथम आधार के रूप मे अनुमान करते है कि ईश्वर असीमित है, वह ऐसी वस्तु नही हो सकता जो केवल अस्तित्व मे है और न ही वह ऐसी वस्तु है जिस पर अन्य वस्तुए आश्रित है। इसलिए वह अनिवार्यत अस्तित्ववान है।

---

1 कैन गॉड्स एक्जिस्टेन्स बी डिस्प्रूब्ड ? बाइ जे0 एन0 फिन्डले रीप्रिन्टेड इन, द आन्टोलाजिकल अरगूमेन्ट द्वारा प्रकाशित एल्विन प्लान्टिग पृष्ठ–120

2 पूर्वावत पृष्ठ–113

3 पूर्वावत पृष्ठ–115

4 पूर्वोक्त पृष्ठ–119

5 पूर्वोक्त, पृष्ठ–119

जैसा कि सन्त अन्सेल्म मानते है उसके कल्पना किसी भी रूप मे दूर नही की जा सकती। उराका अनस्तित्व अकथनीय है। वह एक ऐरी सत्ता है जो सब तरह से *ग्रहणीय* (inescapable) है। अन्य वस्तुओ को भी अनिवार्यत उस पर आश्रित होना चाहिए।

अपने दूसरे आधार के रूप मे फिन्डले आधुनिक विचार धारा को अस्वीकार करता है जिसके अनुसार अनिवार्य' की अवधारणा केवल *कथनो* या *प्रतिज्ञरितयो* (Propositions) पर लागू होती है, अस्तित्व पर नही। अस्तित्व की व्याख्या अनिवार्य के रूप मे नही की जा सकती जबकि प्रतिज्ञरितयो की व्याख्या इस रूप मे की जा सकती है। दूसरे शव्दो मे अनिवार्य अस्तित्व का गुण नही है अपितु प्रतिज्ञरितयो या कथनो का है क्योकि –

"Necessity in proportions merely reflects our use of words, the arbitiary conventions of our *language*[1]"

फिन्डले उपरोक्त दोनो विचारो के द्वारा यह सिद्ध करते है कि ईश्वर का अस्तित्व नही है यदि ईश्वर का अनस्तित्व अकल्पनीय है, वह अनिवार्यत अस्तित्ववान है और वह सब प्रकार से ग्रहणीय है। लेकिन उसी समय वह यह भी कहते है कि पूर्व अनिवार्यता अस्तित्व का गुण न होकर प्रतिज्ञरितयो (propositions) का गुण है। लेकिन कोई भी अस्तित्ववाची कथन अनिवार्य अथवा विश्लेषणात्मक नही हो सकता। इसलिए इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर का अस्तित्व नही है। जैसा कि –

[1] पूर्वावत्त पृष्ठ–119

"For it God is to satisfty, religious claims and needs He must be a being in every way inescapable One whose existence, and whose possession of certain excellence we cannot possibly conceive away And the views in question really make it self evidently absurd (it they don't make it ungrammatical) of speak of such Being and attribute existence to Him[1]"

आलोचना

फिन्डले के उपरोक्त *सत्तामूलक अप्रमाण* (ontological disproof) की आलोचना दो आधारो पर की जा सकती है–

1 ऐसा कोई अस्तित्ववाची अनिवार्य कथन नही हो सकता जो हमारे साधारण कथनो के साथ सत्य हो, लेकिन यह आवश्यक नही है कि यह सिद्धान्त ईश्वर सम्बन्धी कथनो पर भी समान रूप से लागू हो। जी०डी० ह्यूज (G D Hueghes) का विचार है कि–" that all existential propositions ae contingent is properly understood, a theory about empirical propositions, and it does not in the slightest fallow from the view that all empirical existential propositions are contingent tnat there may not be some other class or propositions which are not to be given such an *analysis*[2]"

1 पूर्वावत पृष्ठ–19
2 जी०डी० ह्यूज इन हिज शेयर आन 'कैन गॉडस एक्जिस्टेन्स बी डिस्प्रूव्ड इन्क्ल्यूडेड इन ए० फल्यू एण्ड ए०सी० मैटन्टायर (प्रकाशित) न्यू एस्से आदि पृष्ठ 60 री प्रिंटेस इन द लाजिकल आफ रीलिजियस बिलीफ बाई के०एन० तिवारी पृष्ठ 66

ईश्वर के अस्तित्व की अनिवार्यता उस प्रकार नही है जिस प्रकार ईश्वर के सम्बन्ध मे कथनो की अनिवार्यता। फिन्डले का सम्पूर्ण अप्रमाण दो प्रकार की सदिग्धताओ पर आधारित है। ए०सी०ए० रेनर (A C A Rainei) का कथन है कि –

"The necessity of God's existence is not the same as the neccessary of a logical implication ------ it is a property ascribed to God, not a piopeity of oui assertions about God To maintain that the ascription of such a property is logically absuid in to confuse the necessity of God's being with the sneccssity of our thinking about it[1]" और हचिग्स (Hutchings) का कथन है कि –

"He (Findlay) takes for granted an unfoitunate and untypical assimitation of this necessity (the necessity of God) to the necessity of propositions about it [2]

लेकिन इस प्रकार की आलोचनाओ का असानी से खण्डन किया जा सकता है हयूज (Hughaes) का कथन है कि ईश्वर के कथन अस्तित्ववाचक एव अनिवार्य दोनो प्रकार के हो सकते है लेकिन वे (कथन) ऐसा कैसे हो सकते है इसकी व्याख्या वे नही करते। मॉलकाम का यह विचार कि धाार्मिक व्यवस्था के अन्तर्गत ईश्वर की अनिवार्यता है यह विश्वास भी इस बात का प्रमााण नही है कि ईश्वर अस्तित्ववाची एव अनिवार्य है उनके

---

1 एस०सी०ए० रेनर (A C A Rainer) इस हिज शेयर आन कैन गाडस एक्जिस्टेन्स बी डिस्प्रूव्ड इन ए० फलू एण्ड ए०सी० गेटेन्टायर (A C mententire) सम्पादित पृष्ठ 68

2 पी०ई० हचिग्स (P E Hutchings) 'नेशेसरी बीइग एण्ड सम टाइप्स आफ टैन्टोलाजी (Tantoloty)' इन फिलोसफी जैन्युअरी 1964 पृष्ठ –9

अतार्किक एव मूर्खतापूर्ण तथ्य धार्मिक व्यवस्था मे विद्यमान नही है हो सकता है ईश्वर की अवधारणा की विशिष्टता के आधार पर ईश्वर सम्बन्धी कथन अस्तित्वपूर्ण और अनिवार्य दोनो मान्य हो लेकिन यदि ऐसा है तो वास्तव मे यह आस्था की शरण लेना है।

2. विश्वमूलक या सृष्टिमूलक प्रमाण (Cosmological Argument)

सृष्टि मूलक प्रमाण एक प्राचीन प्रमाण है। यह विश्व के अस्तित्व के आधार पर ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास करता है। हम इस विश्व मे विद्यमान विभिन्न वस्तुओ और प्राणियो के अस्तित्व को प्रत्यक्षत अनुभव करते है। हम अपने अनुभव के द्वारा यह भी जानते है कि प्रत्येक प्राणी तथा वस्तु का कोई कारण अवश्य होता है जिस पर उसका अस्तित्व निर्भर रहता है। इस प्रकार सृष्टिमूलक प्रमाण मे विश्व के कारण के रूप मे ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। चूँकि यह प्रमाण विश्व अथवा उसके किसी भाग के अस्तित्व से प्रारम्भ होता है जिसे प्रत्यक्ष अनुभव से जाना जा सकता है इसलिए यह प्रमाण सत्तामूलक प्रमाण की उस आलोचना से मुक्त है जिसमे ईश्वर के अस्तित्व को केवल उसके विचार के आधार पर ही प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

सृष्टि मूलक प्रमाण अपने कई रूपो मे बहुत से महान् दार्शनिको द्वारा स्वीकार किया गया है। जिनमे अरस्तू, सन्त थामस अक्वाइनस, डेकार्ट, लाइवनिट्ज और कापल्सटन (Copleston) का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इस

प्रमाण की महत्ता को रोमन कैथोलिक के साथ– साथ प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय के एक बहुत बडे वर्ग द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

सृष्टि मूलक प्रमाण के कई रूप है उनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप है–

1 कारणता मूलक प्रमाण (Causal argument) और

2 आपातिक प्रमाण (Contingency Argument)

कारणता मूलक प्रमाण ईश्वर को विश्व के प्रथम कारण के रूप मे स्थापित करना चाहता है। और आपातिक प्रमाण ईश्वर के अस्तित्व को ससार की अन्तिम व्याख्या के क्रम मे अनिवार्य सत्ता के रूप मे स्थापित करना चाहता है।

सर्वप्रथम हम कारणमूलक प्रमाण पर विचार करेगे। यह प्रमाण इस सामान्य सिद्धान्त पर आधारित है कि *प्रत्येक वस्तु का कारण होता है*। इसी प्रकार विश्व का भी एक कारण होना चाहिए और इस कारण का भी कारण होना चाहिए इस तरह यह कारण श्रृखला एक आदि या प्रथम कारण पर समाप्त होती है, जो ईश्वर है। इसलिए ईश्वर अस्तित्ववान है। कारणता मूलक प्रमाण अक्वाइनस के "Fiveways" कारणता परक प्रमाण के पाच रूपो मे से दूसरा रूप है। अक्वाइनस विश्व के अस्तित्व से अपने तर्क को प्रारम्भ करते है कि विश्व का अस्तित्व तब तक सम्भव नही है जब तक कि एक परम सत्ता, जिसे हम ईश्वर कहते है का अस्तित्व न हो। अक्वाइनस अपना तर्क इस प्रकार रखते है–

"The second way is based on the nature of causation, in the observable world causes are found to be ordered in series, we never deserve, nor ever could, something causing itself, for this would mean it preceded itselt, and this is not possible Such a series of causes must however stop somewhere, for in it an earlier member causes an intermediate and the intermediate a last (whether the intermediate be one or many) Now if you eliminate a cause you also eliminate its effects, so that you cannot have a last cause, nor an intermediate one, unless you have a first Given therefore no stoop in the series of causes, and hence no effect, and this would be an open mistake One is therefore forced to suppose some first cause to which everyone gives the name 'God'"

अर्थात् तर्क कायह दूसरा रूप कारणता के स्वरूप पर आधारित है। प्रत्यक्ष विश्व मे कारण एक श्रृखला के क्रम मे पाये जाते है। कारणो की इस श्रृखला को कही न कही समाप्त होना पडता है। अन्यथा अनवस्थादोष उत्पन्न हो जायेगा। कारणो की श्रृखला का अन्तिम बिन्दु ही प्रथम कारण है और उसे ही हम ईश्वर कहते है।

आलोचना

अक्वाइनस *अनवस्था दोष* (infinite regress) से बचने के लिए प्रथम कारण जो ईश्वर है के अस्तित्व को स्कीकार कर लेते है।अक्वाइनस के अनुसार कारण श्रृखला अनन्त रूप से पीछे नही जा सकती। एक प्रथम कारण अवश्य होना चाहिए।

अक्वाइनस के अनुसार कारणो की अनन्त श्रृखला से स्पष्ट है कि इस समय किसी भी वस्तु का अस्तित्व नही है। लेकिन हम जानते है कि बहुत सी वस्तुए इस समय अस्तित्ववान है, इसलिए कारणो की अनन्त श्रृखला का सिद्धान्त गलत है। हम अक्वाइनस के कारण श्रृखला को वर्णमाला के अक्षरो के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट कर सकते है—

अ   क   ख   य   ज्ञ

यहॉ ज्ञ वर्तमानसमय मे अस्तित्ववान है य, ज्ञ के कारण के रूप मे उपस्थित है, और ख, य के कारण के रूप मे है और इसी प्रकार अ पूरी श्रृखला के कारण के रूप मे है। जब हम कारण की बात करते है तो उसके प्रभाव को भी समझते है। इसलिए यदि अ कभी अस्तित्ववान नही था तो श्रृखला का कोई भी अक्षर अस्तित्ववान नही हो सकता था। अनन्त कारणो की श्रृखला गे विश्वास करने वाले यह स्वीकार नही करते कि कारण श्रृखला मे एक प्रथम कारण है, दूसरे शब्दो मे, वे अ के अस्तित्व को अस्वीकार करते है। चूकि बिना अ के ज्ञ का अस्तित्व सम्भव नही है, ज्ञ इस समय अस्तित्ववान नही हो सकता—और इसलिए यह साफ झूठ है।

परन्तु अक्वाइनस ने यहॉ एक भूल की है। वह इन दो तथ्यो मे भेद करने मे असफल रहे कि—

1 अ अस्तित्वान नही था और

2 अ कारण रहित नही है।

अनन्त श्रृखला मे विश्वास करने वाले कभी नही कहते कि अ का अस्तित्व नही था या अ अस्त्विवान नही है। वे असाधारण रूप से यह कहते है कि प्रत्येक वस्तु का कारण होता है इसलिए अ का भी कारण होना चाहिए, अ कारणरहित नही है। कोई प्रथम कारण नही है। चूँकि वे अ को स्वीकार नही कर रहे है इसलिए वे ज्ञ को भी स्वीकार नही कर रहे है। उनका आशय यह नही है कि इस समय किसी वस्तु का अस्तित्व नही है।

कारणमूलक प्रमाण की अन्य अनेक आधारो पर आलोचना की गई है, जो इस प्रकार है—

1 विश्व एक वस्तु नही है। विश्व वस्तुओ का सग्रह है राग्रह की प्रत्येक वस्तु का कारण भिन्न–भिन्न है लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि वस्तुओ के सम्पूर्ण सग्रह विश्व का भी एक कारण है। इस तथ्य को *डेविडह्यूम* ने अपनी पुस्तक 'डायलॉग्स कन्सर्निंग नेचुरल रीलिजन" (Dialogues Concerning Natural Religion) मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

"Did I show you the particular causes of each individual in a collection of twenty partcles of matter, I should think it very unreasonable, should you *after words* ask me, what was the cause of the whole twenty This is sufficiently explained in explaining the cause of the *parts* "[1]

1 Halner pubblishing Co 1961 PP 57-60 Part IX reprinted in the Existence of God, ed John Hiok, P 97

2 यदि यह मान लिया जाय कि कारणमूलक तर्क वैध है तो भी यह एक ही प्रथम कारण को सिद्ध नही करता। क्योकि इस अनुमान का कोई ठोस आधार नही है कि विश्व मे सभी विभिन्न कारण श्रृखलाये अन्तिम रूप से प्रथम कारण मे समाहित हो जाती है। *क्योकि प्रथम कारण की बहुलता तब तक सम्भव नही होगी जब तक कि यह न माना जाय कि कारणो की कोई भी श्रृखला अनन्त नही है।*

3 कुछ आलोचको के अनुसार यह प्रमाण प्रथम कारण के वर्तमान अस्तित्व को स्थापित करने मे असमर्थ है। चूँकि अनुभव से ज्ञात है कि कारण का प्रभाव काफी समय बाद तक रहता है, भले की वह नष्ट हो चुका हो। इसलिए यदि ईश्वर प्रथम कारण है तो इस सिद्धान्त के द्वारा उसके वर्तमान अस्तित्व को स्थापित नही किया जा सकता है।

4 कारणता मूलक प्रमाण केवल अवैध ही नही है अपितु आत्मव्याघाती भी है। यह निष्कर्ष कि ईश्वर कारण रहित है इस अवधारणा के विरूद्ध है कि *प्रत्येक वस्तु का कारण होता है*। यदि आधार वाक्य सत्य है तो निष्कर्ष सत्य नही हो सकता और यदि निष्कर्ष सत्य है तो आधार वाक्य सत्य नही हो सकता। शॉपेनहावर ने टिप्पणी की है कि—विश्वमूलक प्रमाण की पूरी प्रक्रिया जो सार्वभौमिक कारण के नियमो का पालन करती है ठीक उसी प्रकार है जैसे कि मजिल पर पहुँच जाने के बाद सीढी का त्याग कर दिया जाता है।

5 इस प्रमाण के समर्थको का कहना है कि जब वे यह कहते है कि प्रत्येक वस्तु का कारण होता है तो इसका अर्थ यह कभी नही लगाते कि ईश्वर का भी एक कारण है उनका तात्पर्य यह है कि ईश्वर के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु का कारण होता है। लेकिन पुन प्रश्न उठता है कि हम इस बिन्दु पर क्यो रुके? विश्व को ही उसका स्वय कारण क्यो न मान ले जो हमारे प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है। *डेविड ह्यूम* अपने "Dialogue Concerning Natural Religion" डायलॉग्स कन्सर्निंग नेचुरल रीलिजन मे कहते है कि[1]

यदि हम रूक जाते है और आगे नही जाते तो इतना आगे ही क्यो जाये? क्यो न भौतिक विश्व पर रूक जायॅ, हम अपने को बिना अनन्त तक गये कैसे सन्तुष्ट कर सकते हैं? इसके बाद उस अनन्त विकास क्रम मे क्या सन्तुष्टि है? यदि भैतिक विश्व किसी समान आदर्श विश्व पर आधारित है तो यह आदर्श विश्व किसी अन्य पर आधारित होगा और ऐसा ही आगे भी बिना अन्त के चलता रहेगा। इसलिए यही अच्छा होगा, कि वर्तमान भौतिक विश्व के परे न जाया जाय। उनके शब्दो मे—

" If we stop and go no further, why go so far? why not stop at the material world? How can we satisfy ourselves without going on ed infinitum? And after all, what satisfaction is there in that infinite progression? Let us remember the story of the Indian philoscpers and his elephant It was never more applicable than to present

[1] भाग चार हॉस्पर्स की पुस्तक मे उद्धृत पृष्ठ—431

subject If the material world rests upon a similar ideal world, this ideal world must rest upon some other, and so on, without end It were better, therfore, never to look beyond the present material world By supposing it to contain the principle of its order within itself, we really assert it to be God, and the sooner we arrive at that Divine Being, so much the better, when you go one step beyond the mundane system, you only excite an inquisitive humor, which it is impossible ever to satisty"[1]

6 हमारा करणता का ज्ञान पूर्णतया अनुभव पर आधारित है। अनुभव से परे इसका कोई अर्थ नही है। जैसा कि कान्ट कहता है—

"This principal is applicable only in the sensible world, outside that world it has no meaning what *so ever*
the principal of causality has no meaning and no criterian for its application save only in the sensible world But in the cosmological proof it is precisely in order to enable us to advance beyond the sensible world that it is imployed"[2]

7 सृष्टिमूलक प्रमाण की सफलता मुख्यत कारण श्रखलाओ की अनन्तता की असम्भावना पर आधारित है। लेकिन कारणश्रृखला विलकुल सम्भव है जैसा कि हैस राइखेनबाख (Hans Reichenbach) ने कहा है कि—

---

1 Part IV quoted in Hosper's book P 431
2 क्रिटिक आफ प्योर रीजन नार्मन केम्प स्मिथ पृष्ठ—288 मैकमिलन एण्ड क० लि० लदन 1952

"There need not have been a first event, we can imagine that every event was preceded by an earlier event, and that time has no beginning The infinity of time in both directions, offers no difficulties to the understanding We know that the series of numbers has no end, that for every number there is a larger number, if we include the negative number the number series has no beginning either, for every number there is a smaller number, Infinite series without a beginning and a end have been successfully treated in mathematics, there is nothing paradoxical in them To object that there must have been a first event, a beginning of time, is the attitude of an untrained mind Logic does not tell us anything about the structure of time Logic offers the means of dealing with infinite series without a beginning as well as with series that have a beginning If scientific evidence is in favour of an in,finite time, coming from infinity and going to infinity, logic has no objection"[1]

8 अन्त मे यह कहा जा सकता है कि यदि इस तर्क को मान भी लिया जाय तो इस से उस ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नही होता जो भक्ति का विषय है। इस प्रमाण से यह प्रमाणित नही होता कि प्रथम कारण सर्वशक्तिमान, शुभ, वैयक्तिक, अपने रचे हुए प्राणियो से प्रेम करने वाला और अपने उपासको को सन्तुष्ट करने वाला है। धार्मिक चेतना केवल प्रथम कारण की स्थापना से सन्तुष्ट नही होती जिसमे ईश्वर के उपरोक्त आर्कषक गुण न हो।

---

1 Hans Reichenbach The Rise of Scientific philosophy p 207-208

सृष्टिमूलक प्रमाण का दूसरा रूप जो **आपातिक प्रमाण** (The argument form contingency) के नाम से जाना जाता है उपरोक्त कुछ आलोचनाओ से बचने का प्रयास करता है। यदि हम अनुमान करे कि कारणो की श्रृखला अनन्त है अथवा विश्व असीम है और उसका प्रारम्भ नही है तो इसके अस्तित्व की व्याख्या नही की जा सकती। सृष्टि मूलक प्रमाण दावा करता है कि विश्व का अस्तित्व अन्तिम रूप से एक तार्किक (Intelligible) तथ्य है जिसकी व्याख्या एक ऐसी सत्ता के द्वारा सम्भव है जिसका अस्तित्व स्वय व्याख्यायित हो सकता है और जिसका अस्तित्व विश्व के अस्तित्व के लिए पर्याप्त कारण प्रदान करता है।

अक्वाइनस अपने प्रमाण के तीसरे रूप आपातिक प्रमाण को इस प्रकार व्यक्त करते है—

"Some of the things we come across can be but need not be, for we find them springing up and dying away, thus sometimes is being and sometimes not Now everything can not be like this, for a thing that need not be, once was not, and if everything need not be once upon time there was nothing But if that were true there would be nothing even now Because something that does not exist can only be broughaat in to being by *some thing* allready existing So that if nothing was in being nothing could be broughaat into being, and nothing would be in being now, which contradicts observation Not everything therefore is the sort of thing that need not be, there was got to be something that must be

Now a thing that must be, may or may not owe this necessity to something else But just as we must stop somewhere in a series of causes, so also in the series of things which must be and owe this to other things One is forced therefore to suppose something which must be, and owes this to no other thing than itself, indeed it itself is the cause that other things *must be*" [1]

फादर कापल्स्टन (Father Copleston) के अनुसार यदि करणो की अनन्त श्रृखला होती तो इसे विश्व की अन्तिम व्याख्या की आवश्यकता से बाहर नही होना चाहिए था। भौतिक कारणो की श्रृखला, भौतिकवस्तुओ, की अपर्याप्त व्याख्या है। और इसलिए सम्पूर्ण भौतिक वस्तुओ की श्रृखला का कोई एक सासारिक कारण नही हो सकता, अपितु वह विश्वातीत (Trancendent) कारण होना चाहिए।

फादर कॉपल्स्टन (Father Copleston) रसेल के साथ सवाद करते हुए कहते है कि–

"What we call the world is intrinsically unintelligible apart form the existence of God The infinity of the series of events, if such infinity could be proved, would not be in the slightest degree relevant to the situation If you add up chocolates, you get chocolates after all, and not a sheep If you add up chocolates to infinity you presumbly get an infinite number of chocholates, so, if you add up contingent

---

[1] सुम्मा थियोलॉजिकल 1 15 उद्धित आरगुमेन्टस फार द एक्जिस्टेन्स ऑफ गॉड में जॉन हिक द्वारा उद्धित पृष्ठ–43 44

beings to infinity, you still get contingent beings not a necessary Being"[1]

आपातिक प्रमाण के अनुसार जब हम समस्त भौतिक वस्तुओ की व्याख्या पर प्रश्न उठाते है तो हम इसके कारण की बात नही करते, बल्कि वास्तविक रूप मे कहते है कि श्रृखला चाहे सीमित हो या असीमित तब तक उसकी व्याख्या नही की जा सकती जब तक कि यह आपातिक वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को धारण न करे। जैसा कि अपने चारो ओर हम आपातिक सत्ताओ को देखते है। इसमे सभी भौतिक वस्तुए एव सभी मानवीय चेतनाए भी समाहित है। उन्हे आपातिक कहने का हमारा तात्पर्य यह है कि उन्हे अस्तित्व मे नही होना चाहिए था इसका तात्पर्य यह है कि इसके विश्व की, अथवा भौतिक वस्तुओ की, अथवा मानव प्राणियो की कल्पना की जा सकती है। विशेष आपातिक वस्तुओ की व्याख्या अन्य आपातिक वस्तुओ पर आधारित है। जैसे मानव प्राणियो की व्याख्या उनके माता–पिता से सम्भव होती है। फिर भी चूँकि ये अन्य वस्तुए भी आपातिक है इसलिए वे वस्तुओ की वास्तविक व्याख्या करने मे असमर्थ है। आपातिक वस्तुओ की वास्तविक व्याख्या अनिवार्य सत्ताओ के बिना सम्भव नही है। *यह सत्ता अपने अस्तित्व के लिए अपने पर ही आश्रित है* (The reason for its existence within itself) और जो इस *विश्व का पर्याप्त कारण है* (Sufficient reason) दूसरे शव्दो मे आपातिक वस्तुओ की सत्ता एक अनिवार्य सत्ता को सूचित करती है। इस अनवार्यत अस्तितत्ववान सत्ता को असीमित रूप से पूर्ण होना चाहिए, जो कि ईश्वर है।

---

[1] ए डीबेट आन द एक्जिस्टेन्स ऑफ गॉड– बरट्रैन्ड रसेल एण्ड एफ०सी० कापल्स्टन द एक्जिस्टेन्स ऑफ गॉड द्वारा सपादित जॉनहिक, पृ०–174

पर्याप्त कारणता का सिद्धान्त लाइबनिट्ज द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार तब तक कोई तथ्य वास्तविक या अस्तित्ववान नही हो सकता कोई कथन सत्य नही हो सकता जब तक कि इसका पर्याप्त कारण न हो कि इसे वैसा या अन्य रूप मे क्यो होना चाहिए *लाइबनिट्ज* का कथन है –

"There is a reason in Nature why something should exist rather than nothing This is a consequence of the great principle, that nothing happens without a reason, and also that there must be a reason why this thing exists rather than *another* "[1]

दूसरे शब्दो मे यह तर्क किया जा सकता है कि विश्व या उसका कोई तथ्य एक निश्चित समय मे क्यो है। इस सिद्धान्त से सिद्ध नही किया जा सकता बल्कि यह विचार की अनेक प्रक्रियाओ द्वारा पूर्वअनुमानित है जिसे हम बौद्धिक प्रक्रिया कह सकते है जो तार्किकता का मूलभूत सिद्धान्त है। पर्याप्त कारणता के सिद्धान्त की सफलता के लिए व्याख्याओ पर ध्यान देना आवश्यक है। जब हम यह प्रश्न करते है कि सभी आपातिक वस्तुओ अथवा कोई आपातिक वस्तु वैसी ही या अन्य रूप मे क्यो है तो हमे इसका उत्तर केवल अनिवार्य सत्ता की जो ईश्वर है की अन्तिम व्याख्या से मिलता है।

---

[1] G W Leibniz ' A Resume of Metaphysics' in G H R Parkinson (ed), Leibniz Philosphical writing (London & Toronto 1973) P 145 Re printed in 'an Introduction to the philosphy or Religion ' by Brain Davis P 40

इस प्रगाण के समर्थको का कहना है कि तथ्य ज्ञ तार्किक रूप (Intelligctalc) से य, ख, क, और अ के तथ्यो के सम्बन्धो से बना हुआ है (जो ज्ञ के पूर्ववर्त्ती अथवा समकालीन हो सकते है) लेकिन यदि इनमे से प्रत्येक दूसरे तथ्यो से तार्कित रूप से निगगित होता है तो इस समष्टि के पीछे एक ऐसी सत्ता का होना आवश्यक है जिसकी व्याख्या उसी से (स्वय) सम्भव हो, और जिसका अस्तित्व सम्पूर्ण तत्त्वो की अन्तिम व्याख्या को समाहित करता है। यदि ऐसी सत्ता का अस्तित्त्व नही है तो विश्व केवल अबौद्धिक एव निष्ठुर होगा।

काट ने आपातिक प्रमाण की व्याख्या इस प्रकार किया है

"It iuns thus If anything existes, an absolutely neccssaiy bcing must also cxist No I, at least exist Theiefore an absolutely necessary bcing exists The minor premises contains an experience, the major premiss the infcicncc fiom there being any experience at all to the existence of the necessary [1]"

काट आगे अपने पादटीका (Foot note) मे कहता है कि "This infcience is too well known to require detailed statmcnt It depends on the supposedly trancendental law of natuial causality that eveiything contingent has a cause, which, if itself contingent must likewise have a cause, till the seiies of suboidinate causes ends with an absolutely neccssaiy cause, which it would have no completeness "[2]

---

1 क्रिटिक आफ प्योर रीजन, ट्रास नार्मन केम्प स्मिथ पृष्ठ 285

2 पूर्वोक्त पृष्ठ–285–286

(J J C Smart) जे० जे० सी० स्मार्ट ने आपातिक प्रमाण की व्याख्या इस तरह से की है।

"Everything in the world around us is contingent That is with regard to any particular thing, it is quite conceivalble that it might not have existed For example, if you were asked why you existed, you could say that it was because of your parent, and it asked why they existed you could go still further back, but how ever for you go back you have not, so it is argued, made the fact of your existence really intelligible, for how ever, for back you go in such a series you only get back to something which itself might not have existed For a really satisfying explanation of why anything contingent (such as you or me or this toble) exists you must eventually begin with something which is not itself contingent, that is, with some thing of which we cannot ray that it might not have existed, that is we must begin with a necessary being, so the first part of the argument boils down to this It anything exists on absolutely neccesary being must exist Something exists Therefore an absolutely necessary being must exist "[1]

आलोचना

1 पर्याप्त कारणता के नियम (सिद्धान्त) को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या का सहारा लिया गया है। परन्तु क्या कोई अन्तिम व्याख्या है, और क्या यह अनिवार्य रूप से ईश्वर

है? ईश्वर एव सासारिक विश्व का नियम एक समान होना चाहिए। अन्टोनी फ्ल्यू अपनी पुस्तक 'गॉड एण्ड फिलॉसफी' (God and Philosophy) मे विश्वमूलक प्रमाण की आलोचना किया है कि यह प्रमाण वैश्विक नियमो के साथ सन्तोषजनक है कि एक नित्य सृष्टिकर्ता चेतना इस रूप मे तभी स्यत व्याख्यायित हो सकती है जबकि भौतिकविश्व का अस्तित्व मूलनियमो को स्पष्ट करे जैसा कि उसे स्पष्ट करना चाहिए, अन्यथा नही।

यदि प्रत्येक आपातिक वस्तु अथवा चेतना को एक व्याख्या की आवश्यकता होती है फिर ईश्वर के लिए यह व्याख्या आवश्यक क्यो नही है? हम ऐसी कल्पना कैसे कर लेते है कि ईश्वर अन्तिम व्याख्या है।

2 सबसे गम्भीर दार्शनिक आक्षेप जो इस तर्क पर हाल के वर्षो मे डाला गया है वह यह है कि 'अनिवार्य सत्ता (Neccriary Being) का विचार अतार्कित (Unintelligible) है। यह कहा जात है कि केवल प्रतिज्ञप्ति न कि वस्तुए तार्किक रूप से अनिवार्य हो सकती है और इस प्रकार तार्कित अनिवार्य सत्ता की बात करना भाषा का दुरूपयोग है। जे0 जे0 सी0 स्मार्ट कहते है–

"Asking foi a logically necessary first cause is 'worse than asking foi the moon,' for where as to get moon is only Physically impossible, to get a logically necessary being is logically impossible "

3 काट ने अपने क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन' मे स्पष्ट किया है कि इस तर्क मे अनिवार्य सत्ता का ईश्वर रूप मे परिवर्तन पूर्वकल्पना के रूप मे तभी सम्भव है जबकि उसका अस्तित्व ईश्वर की अवधारणा मे निहित हो और जो कि केवल एक विचार (अवधारणा) है। और यह अन्य कुछ न होकर सत्तामूलक प्रमाण का ही परिवर्तित रूप है और हम यह सिद्ध कर चुके है कि सत्तामूलक प्रमाण ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने मे असफल रहा है।

4 ररोल भी कॉपल्स्टन के साथ सवाद मे स्पष्ट करते है कि सासारिक वस्तुओ की सामान्य व्याख्या का तात्पर्य है उनके तात्कालिक कारण को ज्ञात करना, इन तात्कालिक कारणो के कारण की भी खोज की जाती है और इसी तरह आगे भी। लेकिन एक सम्पूर्ण व्याख्या की खोज करना जिसमे आगे कुछ भी न जोडा जा सके बेकार है। यह मानना कि व्याख्याएँ दोषपूर्ण है जब तक कि सासारिक वस्तुओ की अनिवार्य सत्ता से व्याख्या न की जाय, गलत है। अन्तिम रूप से हम विश्व को अतार्कित (Brute fact) तथ्य के रूप मे स्वीकार करते है।

यदि यह मान भी लिया कि पूरे आपातिक विश्व की व्याख्या के लिए एक अन्तिम व्याख्या या अनिवार्य सत्ता की आवश्यकता है, फिर भी हम यह कैसे कह सकते है कि यह अन्तिभ व्याख्या ईश्वर है ? यदि हम अनिवार्य सत्ता को प्रमाणित भी करते है तो इससे यह निष्कर्ष नही निकलता कि इस अनिवार्य सत्ता मे वे सभी गुण है जो एक नैतिक ईश्वर मे होते है।

3. प्रयोजनमूलक प्रमाण (Teleological Argument)

प्रयोजनमूलक प्रमाण प्राचीनतम, सर्वाधिक महत्वपूर्ण एव अनुभवमूलक प्रमाण है अनुभवमूलक कहने का आधार विश्व के सम्बन्ध मे मनुष्य का अपना अनुभव है । इस प्रमाण के द्वारा विश्व मे विद्यमान व्यवस्था, समायोजन एव प्रयोजन के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। इस प्रमाण के समर्थक यह कहते है, और हमारा सामान्य अनुभव भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जब कोई व्यवस्था स्थापित की जाती है अथवा किसी वस्तु की रचना की जाती है तो उसके मूल मे कोई उद्देश्य या प्रयोजन अवश्य होता है । इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे एक निश्चित व्यवस्था स्पष्ट रूप से दिखायी देती है जिसके अनुसार इसके समस्त ग्रह–नक्षत्रो का सचालन होता है। इसकी सभी वस्तुएँ तथा कार्य प्रणालियाँ कुछ विशेष प्राकृतिक नियमो द्वारा शसित होती है जो सर्वत्र व्याप्त है। ब्रह्माण्ड मे विद्यमान इस व्यवस्था के कारण ही वैज्ञानिक इसका सचालन करने वाले प्राकृतिक नियमो तथा इसकी कार्य–प्रणालियो को कुछ सीमा तक समझने मेसमर्थ हो सके है। विश्व मे विद्यमान इस व्यवस्था के अतिरिक्त सभी प्राणियो के अगो मे समायोजन दिखाई देता है जिसके कारण वे जीवित रहते है और उनका विकास होता है। ब्रहमाड मे विद्यमान इस व्यवस्था और प्रयोजन से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसका कोई बुद्धिमान रचयिता अवश्य है जिसने एक विशेष प्रयोजन को ध्यान मे रखकर इसमे यह व्यवस्था स्थापित की है। ब्रह्माण्ड का यह रचयिता और व्यवस्थापक ही ईश्वर है जिसके बिना इसके अस्तित्व की कल्पना भी नही की जा सकती ।

सन्त थॉमस अक्वाइनस ने अपने फॉइव वेज' (Five Ways) के पॉचवे प्रकार के रूप मे इसे स्पष्ट करते हुए कहते है कि –

"The fifth way is taken from the governance of the world We see that things, which lack intelligence, such as natural bodiesas, act for an end, and this is evidence from their acting always, or nearly always, in the same way, so as to obtain the best resasult Hence it is plain that not fortuito usly, but designedly, do they achieve their end Now whatever lacks intelligence, can not move towords an end, unless it be directed by some being endowed with knowledge and intelligence, as the arrow is shot to its mark by the archer. Therefore some intelligent being exirts by whom all natural things are directed to their end , and this being we call good"[1]

इस तर्क मेदो तत्व विचारणीय है–

(1) लक्ष्य प्राप्ति हेतु कार्य का निरीक्षण (The observation of "working for ends "

(2) इससे सम्बन्धित एक निर्देशक बुद्दि (The reference from this to a directing intelligence)

ह्यूम (1711–1776) अपनी पुस्तक "डायलॉग्स कन्सर्निंग नेचुरल रिलिजन" मे (design argument) आकार देने वाले प्रमाण को इरा प्रकार व्यक्त किया है–

[1] सुम्मा थियोलाजिका द फाइववेज–थॉमस–थॉमस अक्वाइनस ए माडर्न इन्ट्रोडक्शन टु फिलॉसॉफी द्वारा सम्पादित पॉल एडवर्डस पृष्ठ 396–397

"Look ıound the world contemplate the whole and evely pait of ıt you will find ıt to be nothing but one great machine, sub-divided into an infinite number of lesser machines, with again admit of subdivisions, to a degree beyond what human facilities can tıace and explain All thesas e vaıious machines, and even their most minute parts are adjusted to each other with an accuracy Which revishesas into admıation all men, who have ever contemplated them The curious adapting of mesans to ends, throughaaout all nature, resembles exactly, though it much exceeds, the pıoductions of human contrivance of human design, thoughaat, wisdom and intelligence, since therefore the effects resemble one another, we are led to infer, by all the ıules of analogy that the causes also resemble, and that the authoı of nature is somewhat similar to the mind of man, though possessed of much larger faculties, proportioned to the grandeuı of the woık, which he has executed"

काट जिसने सत्तामूलक एव विश्वमूलक प्रमाण की आलोचना की है विश्वास करते है कि प्रयोजनमूलक प्रमाण सबसे प्राचीन, सार्वाधिक स्पष्ट और मानव चेतना की सामान्य बुद्धि के अनुरूप है। और इसके आधार पर तार्किक रूप से बढते हुए जो प्रगाण निकाले गये है जो यद्यपि अनुभवमूलक है, फिर भी इतना शक्तिशाली है कि मन के तीव्र सशय के द्वारा भी खण्डित नही किया जा सकता।

काट कहता है कि–

"The chief points of the physicotheological proof are as follows

1. In the world we everywhere find clear signs of an order in accordance with a determinate purpose, carried out with gresat wisdom, and this in a universe which is indescribly varied in content and unlimited in extent

2. This purposive order is quite alien to the things of the world, and only belongs to them contingently, that is to say, the diverse things could not of themselvesas have co-operated by so great a combination of diverse mesans, to the fulfillment of determinate final purposes had they not been chosen and designed for these purposes by an ordering rational principle in conformity with underlying idea

3. There exists, therefore, a subline and wise cause (or more than one), which must be the cause of the world not merely as a blindly working all-powerful nature, by fecundity, but as intelligence, through freedom

4. The unity of this cause may be inferred from the unity of the reciprocal relations existing between the parts of the world as members of an artfully arranged structuresas -inferred with certainly in so far as our observation suffices for its verification, and beyond these limits with probability, in accordance with the principles of analogy [1]

1 क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन नार्मन केम्प स्मिथ द्वारा अनुवादित पृष्ठ–294–295

विश्वमूलक प्रमाण की तरह प्रयोजनमूलक प्रमाण भौतिक विश्व मे लक्ष्य की प्राप्ति हेतु तथ्यो के समायोजन को देखकर प्रारम्भ होता है। लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशीलता अथवा उद्देश्यो का समायोजन जिरा पर एक समय विश्व के सामान्य समायोजन पर विशेष बल दिया गया था लेकिन बाद मे यह युक्ति मुख्यत कुछ विशेष उदाहरणो से स्पष्ट किये जाने मे परिवर्तित हो गई, जैसे मनुष्य की ऑख। बाद का तर्क बुद्धिवादियो और अठारहवी एव उन्नीसवी शताब्दी के धर्मशास्त्रियो के बीच विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। विलियम पेली की 'नेचुरल थियोलॉजी' (Natural Theology) मे ऑख और एक घडी के बीच प्रसिद्ध अनुमान इस प्रकार की प्रस्तुति का प्रसिद्ध उदाहरण है। अठारहवी शताब्दी मे विलियम पेली अपनी (Natuial Theology) 'नेचुरल थियोलॉजी' मे ईश्वरवाद के समर्थन मे एक अनुमान का उदाहरण प्रस्तुत करते है—

"In crossing a hesath, suppose I pitched my foot against a *stone*, and were asked how the stone came to be there, I might possibly answer, that, for anything I know to the contrary, it had laid there for ever nor would it perhaps be very esasy to show the absurdity of this answer But suppose I had found a *watch* upon the ground and it should be inquired how the watch happened to be in that place, I should hardly think of the answer which I had before given, that, for anything I knew, the watch might have been always there Yet why should not this answer serve for the watch as well as for the stone? Why is it not as admissible in the second case, as in the first? For this resason, and for no

other, viz., that, when we come to inspect the watch, we perceive (what we could not discover in the stone) that its several parts are framed and put together for a purpose, e g that they are so formed and adjusted as to produce motion, and that motion so regulated as to point out the hour of the day, that, if the different parts had been differently shaped from what they are, or placed after any other manner, or in any other order, than that in which they are placed, either no motion at all would have been carried on in the machine, or none which would have answered the use "[1]

इसके बाद विलियम पेली इस अनुमान के कुछ विशिष्ट रूपो का वर्णन करते है। इनमे कुछ इस प्रकार है –

(1) यह अनुमान घडी से घडीसाज के अनुमान को कमजोर नही करता जबकि हमने घडी को बनते हुए नही देखा है, बल्कि तथ्य स्वय दर्शाता है कि यह एक उद्देश्य (प्रयोजन) का परिणाम है।

(2) यदि घडी ठीक ढग से कार्य नही करती तब भी यह हमारे अनुमान को कमजोर नही करता। यह कहा जा सकता है कि हवा और वर्षा जैसी प्राकृतिक शक्तियो की आकस्मिक गति की तरह होने के बजाय यह किसी उद्देश्य रचना (Design) का परिणाम है।

---

[1] नेचुरल थियोलाती अध्याय–1 जॉन हिक द्वारा 'द एक्जिस्टेन्स ऑफ गॉड मे पुनर्मुद्रित पृष्ठ–99–100

(3) यह हमारे अनुमान को इसलिए भी कमजोर नही करता कि हम घडी के प्रत्येक भाग के कार्य को नही जानते। इसके विपरीत (design)) उद्देश्य रचना का अनुमान बहुत ठीक है।

(4) यदि अनुमान के द्वारा हमे यह ज्ञात हो कि एक घडी मे बहुत बडी कारीगरी है जिससे यह अन्य घडियो का निर्माण करती है, और यह घडी स्वय उस महान कारीगरी का परिणाम है, इसका तात्पर्य यह है कि यह स्वय पूर्व घडी का उत्पाद है और इसी तरह आगे भी। फिर भी यह सम्भावना हमारे अनुमान को कमजोर नही करती। यह विविध स्वत उत्पादित यन्त्र की उद्देश्यरचना को स्पष्ट करता है जिससे उद्देश्यकर्त्ता या प्रयोजनकर्त्ता का अस्तित्व बलपूर्वक सिद्ध होता है।

पेली का तर्क है कि भौतिक ससार–(प्राकृतिक विश्व) एक निर्मित (designed) यन्त्र की तरह है, जैसे कोई घडी। नक्षत्रो की गति, मौसमो की नियमित प्रक्रिया, प्राणियो की जटिल बनावट और परस्पर समायोजन ये सभी (design) उद्देश्य को स्पष्ट करते है। यदि हम मानव मस्तिष्क का उदाहरण ले तो पाते है कि इसमे हजारो जैविक कोश एक साथ समवर्गीय व्यवस्था मे कार्य करते है। ऑख स्वत व्यवस्थित होने वाले लेसो एव रगो की भावुकता से युक्त एक श्रेष्ठ चलचित्र की तरह फोटो खीचने वाला यन्त्र है।

दैवीय व्यवस्था को दिखाने के लिए पेली जानवरो के सहजज्ञान एव विशेषताओ पर विचार करते है, जो इन्हे (पशुओ

को) जीवित रहने मे समर्थ बनाते है। जैसे हवा के लिए चिडियो के पखे की उपयुक्तता और मछली को जल पीने हेतु उसके सुफना (fin) की उपयुक्ता। और वातावरण मे ओजोन गैस की परत जिरारो सूर्य की पराबैगनीकिरणे पृथ्वी के सतह पर छन कर आती है जिससे जीवन सम्भव हो पाता है। ये सभी वस्तुए ईश्वर को एक प्रयोजनकर्त्ता या उद्देश्यरचनाकार के रूप मे सूचित करती है। यथा ***ब्राउन*** के शब्दो मे –

"The ozone gas layer is a mighty poof of the cresator's forethoughaat Could anyone possibly attribute this device to a chance evolutionary process? A *wall* which prevents death to every living thing, Just the right thicknesass, and exactly the correct defence, givesas every evidence of plan "[1]

इस प्रकार पेली सादृश्यता की सहायता से कहता है कि जैसे घडी, घडीसाज का इशारा करती है, ठीक इसी प्रकार विश्व, विश्वनिर्माता की ओर इशारा करता है, जो ईश्वर है— "every indication of contrivance, every manifestation of design Which existed in the watch, exists in the works of nature, with the difference, on the side of nature of being greater and more, and that in a degree which exceeds all computation I mean, that the contrivancesas of nature surpass the contrivancesas of art, in the complexity, subtility, and curiosity of the mechanism, and still more, if possible, do they go beyond them in number and variety, yet in a multitude of cases, are not less s evidently mechanical, not

---

[1] Athur I Broun "Footprints of God " P 102 (Findelay ohio Fundamental Truth Publishers 1943) quoted in 'Arguments for the existence of God by John Hick, P 7

less evidently contrivances, as, not less evidently accommodated to their end, or suited to their office, than are the most perfect productions of human ingenuity [1]

उन्नीसवी शताब्दी मे विलियम डरहम (William Derham) ने अपनी पुस्तक 'फिजिको–थियालॉजी' आर,ए डेमान्स्ट्रेशन ऑफ द बीइग एण्ड एट्रिब्यूट्स ऑफ गॉड, फ्राम हिज वर्क्स ऑफ क्रीएशन," मे ठीक इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया था। वह विश्व निर्माता के रूप मे ईश्वर की पूर्वमान्यता स्वीकार करता है। विश्व मे सर्वत्र व्यवस्था और क्रम है जहॉ प्रत्येक एक दूसरे की सहायता करते है चाहे वे मनुष्य हो या पशु। उनके लिए प्रत्येक वस्तु सेवा योग्य है।

जैसे विश्व की वस्तुए उसके बनाने वाले (व्यक्ति) को सूचित करती है, वैसे ही यह विश्व ईश्वर को विश्व निर्माता (world maker) के रूप मे सूचित करता है।

लेकिन इस तर्क की डेविड ह्यूम द्वारा कई आधारो पर आलोचना की गई है। ह्यूम स्पष्ट रूप से विश्व की प्रयोजनमूलक विशेषताओ से एक दैवीय प्रयोजनकर्त्ता के अनुमान के विरोध मे कई बिन्दुओ पर विचार करता है–

प्रथम विश्व और मानवकृति की समानता उचित नही है। विश्व उचित रूप से मानव उत्पाद की भॉति नही है। इस तर्क से हम यह अनुमान नही लगा सकते कि विश्व किसी उद्देश्य या रचना का उत्पाद है। विश्व एक यन्त्र नही है। विश्व और यन्त्र के बीच कई महत्वपूर्ण विभिन्नताए है। हमारे पास उत्पत्ति प्रक्रिया

1 Paley's 'Natural Theology Chap 3 quoted in 'Arguments for the Existence of God' by John Hick PP 4-5

की कल्पना के लिए कोई तथ्य (ऑकडे) नही है। हमारे अनुभव रागित है, इाके द्वारा हम विश्व की राभी वस्तुओ के बारे मे कोई अनुमान नही कर सकते। एक पौधा या एक जानवर जो पौधे की उपज प्रक्रिया अथवा पीढी द्वारा सम्भव है, यन्त्रवत् नही कहा जा राकता जो तर्क एव प्रयोजन द्वारा उत्पन्न होता है। इसलिए यह तर्क एक रचयिता (Desasigher) ईश्वर के अनुमान के लिए पर्याप्त आधार नही प्रदान करता। ह्यूम का कथन है –

"It is still more unresasonable to form our idea of a unlimited cause from our experience of the narrow production of human design and invention "[1]

"We are still led to infer the universal cause of all to be vastly different from mankind, or from any object of human experience and observation "[2]

द्वितीय, **प्रयोजनमूलक** (Design) प्रमाण मे विश्व के भौतिक विधान (Physical order) की व्याख्या दैवी मस्तिष्क (अथवा दिव्यगनस) के द्वारा की गई है। यह भौतिक व्यवस्था ईश्वर के मस्तिष्क मे पहले से विद्यमान है जिसे किसी व्याख्या की आवश्यकता नही है जबकि भौतिक व्यवस्था के व्याख्या की आवश्यकता पडती है। लेकिन ह्यूम प्रश्न करता है कि जब हम विश्व की व्यवस्था की व्याख्या पर प्रश्न करते है तो हम दैवी चेतना (मरितष्क) (Divine Mind) की व्याख्या का प्रश्न क्यो नही

---

1 Dialogues Concerning Natural Religion' by David Human Part V Reprinted in "The Existence of God " ed, John Hick P 105

2 (पूर्वोवत्) पृष्ठ- 105

उठाते? व्याख्या रहित होने की सुविधा का आनन्द केवल दैवी चेतना ही क्यो प्राप्त करती है? ह्यूम कहते है—

"Have we not the same resason to trace that ideal world into another ideal world or new intelligent principle? But if we stop, and go no further, why go so far? why not stop at the material world?"[1]

तृतीय, ह्यूम आगे स्पष्ट करते है कि कोई भी विश्व निर्मित होने के रूप मे बाध्य है क्योकि ऐसा विश्व नही हो सकता जिसमे कोई समायोजन न हो अथवा जिसमे चिन्तनीय स्तर पर उसके भाग परस्पर सम्बन्धित न हो। जीवन के किसी भी प्रकार की उपास्थिति यह दर्शाती है कि प्रकृति मे एक व्यवस्था और समायोजन है। और आस्तिक लोग प्रकृति मे इस व्यवस्था और समायोजन को एक सोची समझी योजना के उत्पाद के रूप मे देखते है। ह्यूम कभी भी इस विश्व को चेतनापरक योजना के उत्पाद के रूप मे नही मानता, वह इसको दूसरे रूप मे मानता है। ह्यूम एपीक्यूरियन (Epicuresan) माध्यम (approach) का सुझाव देता है—विश्व आकस्मिक गति मे दो छोटे भागो की सीमित सख्या को धारण करता है। असीम समय मे ये छोटे भाग सयोगवश जुड हुए है जो उनके लिए सम्भव है। और यह विश्व उन सयोगो (Combination) मे से एक है जो पूर्व मे घटित हुआ था। ह्यूम हवाला देते है—

1 Kemp Smith Introduction to 'Hume's Dialogues concerning Natural Religion' (Oaxford Clarandom Press 1975) PP 199-200 quoted in Arguments for the existence of God' by John Hick P 10

"Instesad of supposing matter infinite as Epicurus did, let us suppose it finite, A finite number of particles is only susceptible of finite transpositions, and it must happen, in an eternal duration, that every possible order or position must be tried an infinite number of times This world, therefore, which all its events, even the most minute, has before been, produced and destroyed, and will again be produced and destroyed, without any bounds and limitations No one who has a conception of the powers of infinite, in comparison of finite, will over scruple this determination"[1]

अपनी आलोचना के चौथे क्रम मे ह्यूम तीन मुख्य बिन्दुओ का समावेश करता है–

(1) यदि हम विश्व के एक दैवीय निर्माता की कल्पना करते है फिर भी हम उस तरह की कल्पना नही कर सकते कि विश्व का वह निर्माता असीमित रूप से बुद्धिमान है, शुभ है और शक्तिमान है। एक प्रदत्त प्रभाव से हम केवल एक कारण की कल्पना कर सकते है जो उस प्रभाव को उत्पन्न करने गेरामर्थ है, और इसीलिए एक सीमित विश्व से हम एक असीमित सृष्टिकर्त्ता की कल्पना नही कर सकते।

(2) आलोचना का दूसरा बिन्दु भी अत्यन्त महत्वपूण है। यदि यह मान लिया जाता है कि विश्व निर्मित है, तो हम यह अनुमान नही लगा सकते कि विश्व की रचना केवल एक ईश्वर ने की है, न कि बहुत से ईश्वर ने। क्योकि हम

[1] Dialogues concerning Natural Religion Hume Part VIII re-Printed in The existence of God John Hick P 109

अपने सामान्य जीवन मे यह देखते है कि बहुत सी निर्मित वस्तुओ की रचना एक से अधिक व्यक्तियो द्वारा हुई है–

"Can you Product from your hypothesis to prove the unity of the deity? A gresat number of men join in building, a house or ship in rearing a city in framing a common wealth, why may not several deities combine in contriving and forming a world "[1]

(3) चूँकि विश्व विभिन्नताओ से भरा हुआ है और विश्व मे अशुभ है–तो इससे ऐसा सूचित होता है कि ईश्वर शुभ और सर्वशक्तिमान नही है। यथा–

"You have no resason, on your theory for ascribing perfection to the Deity, even in this finite capacity, or for supposing him free from every error, mistake, or incoherence, in his undertakings " "This world, for aught he knows, is very faulty and imperfect, compared to a superior standard, and was only the first rude essay of some infant deity who afterword abandoned it, ashamed of his lame performance, it is the work only of some dependent, inferior deity "[2]

आलोचना के पॉचवे बिन्दु पर ह्यूम के अनुसार चूँकि विश्व अकेला (Unique) है इसलिए हम ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए सम्बन्धात्मक रूप से कारणो या सभावनाओं पर विचार नही कर सकते। कारण का विचार केवल उन्ही तथ्यो के

---

[1] पूर्वोक्त–पृष्ठ–106
[2] पूर्वोक्त

बारे मे किया जा सकता है जबकि हमारे पास कम से कम दो तथ्य हो और वे कारणात्मक रूप से एक दूसरे मे जुडे हुए हो। मान लिजिए अ, ब का कारण है तो हम हमेशा यह देखते है कि जब भी अ घटित होता है, उसके कुछ समय बाद ब भी घटित होता है। लेकिन अपने मे अकेली वस्तु जैसे विश्व के लिए हम कैसे यह विचार कर सकते है क्योकि यहाँ दो वस्तुए नही है बल्कि केवल एक ही वस्तु है जो बेजोड (Unique) है, यहाँ विश्व की तरह कोई दूसरी वस्तु नही है। चूँकि विश्व अकेला (Unique) है, इसलिए कारण का विचार इस पर लागू नही होता है। यथा—

"When two speciesas of objects have always been observed to be conjoined together, I can infer, by custom, the existence of one wherever I see the existence of the other And this I call an argument from experience But how this argument can have place, where the objects, as in the present case, are single, individual, without parellel, or specific resemblance, may be difficult to expalain, And will any man tell me with a serious countenance that an orderly Universe must arise from some thoughaat and art, like the human, because we have experience of it? To ascertain this resasoning, it were requisite, that we had experience of the origin of worlds "[1]

काट प्रयोजनमूलक (Desasign) प्रमाण की ह्यूम द्वारा की गई आलोचना से सहमत है। काट अपने 'क्रिटिक ऑफ प्योर

---

[1] An Enquiry concerning Human Understanding' Sect XI Selby-Bigge P 136/ 'Dialogues' pt II Kemp Smith P 185 quoted in Argument for the existence of God' by John Hick P 13

रीजन' मे तर्क प्रस्तातु करते है कि यदि हम प्रयोजनपरक प्रमाण के आधारवाक्यो मे निहित दावो को मान ले तो भी वे हमे यह अनुमान कराने गे असमर्थ है कि उद्देश्यपरक प्रकृति अथवा विश्व एक तार्किक सृष्टि है।

इससे केवल यह निष्कर्ष निकलता है कि एक शिल्पी (architect) है जो बहुत बुद्धिमान है, और बहुत शक्तिशाली है, न कि एक सृष्टिकर्त्ता जो सर्वाधिक बुद्धिमान और सर्वशक्तिशाली है। *काट के अनुसार–*

"The utmost, therefore, that the argument can prove is an architect of the world who is always very much hampered by the adaptability of the material in which he works, not a creator of the world to whose idea everything is subject "[1]

काट कहता है कि जब हम कहते है कि विश्व एक रचना है और यहॉ एक रचनाकार अवश्य होना चाहिए और वह रचनाकार एक है, और वह ईश्वर है जो सर्वशक्तिमान है तो यहॉ हम सत्तामूलक प्रमाण का सहारा लेते है। हम यह सकते है कि विश्व का रचनाकार ईश्वर, केवल सत्तामूलक प्रमाण का सहरा लेकर ही हो सकता है। इसलिए, प्रयोजनमूलक प्रमाण की वैधता सत्तामूलक प्रमाण पर आधारित हो जाती है। हम यह प्रमाणित कर चुके है कि सत्तामूलक प्रमाण ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने मे असफल रहा है। इसलिए प्रयोजनमूलक प्रमाण भी ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नही करता।

---

1 क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन' एन0के0स्मिथ द्वारा अनुवादित पृ0–296

प्रयोजनमूलक प्रमाण का खण्डन विकासवादी सिद्धान्त (Theory of Evolction) के आधार पर भी किया गया है। विकास का तात्पर्य है एक पौधे या पशु के एक रूप से दूसरे रूप मे धीरे–धीरे परिवर्त्तन। जीवित वस्तुओ के विकास के विचार के समर्थन मे कई प्रमाण उपलब्ध है। जैसे–जैविक अवशेष (fossils) विकासवादी विचार के पक्ष मे मजबूत साक्ष्य है। "Archaeopteryx" (आरकीओपटेरिक्स) एक आदिम (Primitive) पक्षी था, लेकिन इसके पास रेगने वाले (Primitive) पक्षी था, लेकिन इसके पास रेगने वाले (reptilian) कई गुण विद्यमान थे। घोडे के विकास से सम्बन्धित भी कई मजबूत साक्ष्य उपलब्ध है। बहुत से जैविक अवशेष है जिनके प्रत्येक स्तर से यह स्पष्ट होता है कि एक आधुनिक अश्व प्रारम्भ मे लोमडी की तरह एक जानवर था। विकास की तार्किक व्याख्या केवल यह है कि पिछले छ करोड वर्षों के दौरान जानवर धीरे–धीरे परिवर्तित हो गये है।

हम विकासवादी सिद्धान्त के समर्थन मे कह सकते है कि एक पीढी से दूसरी पीढी मे परिवर्तन बहुत मन्द होने के कारण समझ मे आने लायक नही रहता। लेकिन लाखो वर्षों बाद वे बडे परिवर्तन का रूप धारण कर लेते है। उन्नीसवी शताब्दी मे चार्ल्स डॉर्विन ने अपने विकासवादी सिद्धान्त की व्याख्या दो विचारो के आधार पर किया है–

1 अरितत्व के लिए सघर्ष, और

2 योग्यतम का चुनाव (The survival of the fittest)

डॉर्विन की कल्पना के अनुसार अगो का विकास सरलतम अमीबा (Amoebas) से लेकर जीवो की श्रेष्ठ एव जटिल प्रजातियो तक धीरे–धीरे अस्तित्व सघर्ष एव योग्यतम के चुनाव द्वारा हुआ है। डॉर्विन का यह विकासवादी सिद्धान्त जैव वैज्ञानिको द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

डॉर्विन यह नही दिखाता कि रचनाकार (designer) की कल्पना असत्य है या किसी रचनाकार का अस्तित्व नही है। वह केवल इतना कहता है कि विश्व विकास का परिणाम है, इसलिए एक व्यक्ति विश्वास कर सकता है कि एक विश्व वैसा ही सृजित हुआ है जिसमे वह विश्वास कर सकता है। डार्विन का निष्कर्ष कि विश्व विकास का परिणाम है। वह कहना चाहता है कि ईश्वर ने विश्व की रचना उसी प्रकार से की है कि विश्व विकास की धीमी प्रक्रिया द्वारा ही विकसित हो सकता है। इसके (विकासवाद) समर्थक कह सकते है कि ईश्वर ने विकास की धीमी एव मन्द प्रक्रिया का चुनाव अपनी रचना (design) के साधन के रूप मे चुना है। रचना के इस सिद्धान्त की आलोचना की गई है, लेकिन तथ्य यह नही है। इसके (विकासवादी) समर्थक कह सकते है कि ईश्वर ने विकास की धीमी एव मन्द प्रक्रिया का चुनाव अपनी रचना के साधन के रूप मे चुना है। रचना के इस सिद्धान्त की आलोचना की गई है, लेकिन तथ्य यह नही है।

इस (विकासवादी) विश्वास के कारण प्रयोजन मूलक ने अपने आधार का त्याग कर दिया क्योकि यदि एक बार विश्व की

व्याख्या धीमे विकास के सिद्धान्त के आधार पर मान लेने पर एक रचनाकार की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नही है।

यद्यपि सामान्य रूप से डॉर्विन ने स्वय प्रयोजनमूलक प्रमाण को अस्वीकार नही किया है, लेकिन उसका विकासवादी सिद्धान्त प्रोजनमूलक प्रमाण के कुछ महत्वपूर्ण गुणो का खण्डन करता है। जैसे रचनाकार के परोपकारित्व मे विश्वास। एक परोपकारी रचनाकार वह है जो अपने द्वारा रचित प्राणियो की परवाह करता है, और उन्हे कष्ट सहन करते नही देख सकता, यह एक रचनाकार के विश्वास का मुख्य गुण (Spring) है। कोई भी व्यक्ति रचनामूलक प्रमाण से प्रभावित नही हो सकता। यदि वे यह माने कि रचनाकर एक द्रोही है।

एक परोपकारी रचनाकर मे विश्वास विकासवादी प्रक्रिया के द्वारा नही गाना जा सकता, क्योकि विकासवादी प्रक्रिया हमेशा अन्तहीन कष्टो एव मृत्यु से परिपूर्ण है। अस्तित्व के लिए जीवन सघर्ष है जिसमे बहुत से जीव मर जाते है और प्रत्येक जीव निश्चित रूप से मर जाते है। उनमे से अधिकाश जीव भूख, बाढ तूफान, बीमारी आदि से मर जाते है अथवा दूसरो प्राणियो द्वारा जीवित रहने के लिए खा लिये जाते है। सभी प्रजातियो के लाखो जीवन प्रतिदिन प्राय बिना पूरा जीवन जिये मरते रहते है। प्राणियो का यह जीवन लगातार भय और असुरक्षा से भरा हुआ है और अन्तत वे (प्राणी) पीडा और कष्ट मे मर जाते है। यदि प्रकृति (विश्व) सभी प्राणियो समेत एक उद्देश्यपूर्ण रचना है तो रचना की योजना दयामूलक नही है। इसी प्रकार जीव विज्ञान के तथ्य भी रचनाकर के परोपकारी होने की कल्पना नही

करते। इस विश्व मे कोई वस्तु उद्देश्यपूर्ण ढग से नही निर्मित है, वे राभी आवश्यकता और अनुकूलन के द्वारा सम्भव हुई है।

उन्नीसवी शताब्दी मे प्रयोजनमूलक प्रमाण को तर्कसगत मानने वाले कुछ दार्शनिको ने एक नया आयाम (dppıoach) प्रदान किया है। इस नये आयाम (प्रस्ताव) के अनुसार ईश्वरवाद इस विश्व की सर्वाधिक सभव व्याख्या है। ए०सी०एविग (Λ C Evıng) के अनुसार प्रयोजनमूलक प्रमाण को सादृश्यता के आधार पर नही माना जा सकता क्योकि प्रयोजन (रचना) मूलक प्रमाण यह दिखाता है कि विश्व मे अतिरिक्त जटिलता जिसमे जीवित प्राणी अपनी स्वय इच्छानुसार रहते है, केवल एक अवसर (Chancc) का परिणाम नही है अथवा यह केवल किसी अनुरूपता के द्वारा सभव नही है। इस विश्व की सम्भावना को एक अवसर का (Chance) परिणाम मानना उतना ही ओछा है जितना कि एक पुस्तक की रचना बन्दर के द्वारा मानना, जो एक टाइपराइटर के साथ खेल रहा है।

उपरोक्त विचार को उन्नीसवी शताब्दी मे एफ०आर० टेनेन्ट– (F R Tenent 1866-1957) द्वारा अधिक विस्तार दिया गया है। टेनेन्ट विचार करता है कि यान्त्रिक विकासवादी सिद्धान्त ठीक ढग से विश्व की वस्तुओ एव प्राणियो की व्याख्या नही कर पाता। ईश्वरवाद पूरे विश्व की सबसे सम्भव व्याख्या है। उनके अनुसार ईश्वरवाद विश्व की कल्पना के लिए सर्वाधिक सम्भव है। ईश्वरवाद विश्व की कल्पना विश्व की किसी अन्य व्याख्या से अधिक उपयुक्त है। विश्व प्रक्रिया एक अन्तिम प्रयोजन या उद्देश्य है। यह महत्वपूर्ण नही है कि जिस उद्देश्य

को विश्व प्रक्रिया प्राप्त करना चाहती है हम उसे जानते है या नही और विश्व का यह उद्देश्य या लक्ष्य यह दिखाता है कि यह रचित है और एक रचनाकार है –

"A machine can evince intelligent contrivance or design to a man ignorent of engineering and unable to tell precisely what the machine is far Once more, by way of making relevant distinctions, a teleological interpretation of Nature does not require that every detail in nature was purposed or fore-ordained Process may inevitably produce by products which as such, were not purposed, but are the necessary outcome of process by which a purpose is fulfilled " [1]

टेनेन्ट विश्व की ईश्वरवादी व्याख्या के लिए कुछ बिन्दुओ पर विचार करता है कि क्यो ईश्वरवाद विश्व की सर्वाधिक सम्भव व्याख्या करने मे समर्थ है ये बिन्दु है–

1 विश्व का जानने योग्य या समझने योग्य होना। विश्व जानने योग्य है। यदि विश्व मेकेवल दुर्व्यवस्था (chaos) होती तो घटनाए कभी पुर्नघटित न होती, कोई भी सम्बन्ध

स्थापित न हो सकता, कोई भी वैज्ञानिक नियम नही खोजा जा सकता था, कोई सार्वभौमिक नियम न पाया जाता। लेकिन ऐसा नही है। यह हमारे अनुभव के विरूद्ध है। हम अनुभत करते है कि–घटनाए बार–बार घटित होती है। सम्बन्ध स्थापित है, वैज्ञानिक और सार्वभौमिक नियमो की

1 Tennent's Cosmic Teleology' Philosophical Theology reprinted in the Existence of God' ed, John Hick P 122

खोज की जा चुकी है। इसका तात्पर्य यह है कि विश्व बौद्धिक (intelligible) है –

"The primary epistemological contribution to teleological reasoning consists in the fact that the world is more or lesas s *intelligible*, in that it happens to be more or less intelligible, in that it happens to be more or less a cosmos, when conceivably it might have been a self subsistent and determinate 'Chaos" in which seimilar events never occured, none recurred universals had no place relations no fixity, things no nexus of determination, and, "real" categories no foothold"[1]

विश्व की वौद्धिकता दिखाती है कि यह प्रयोजनमूलक है, और इसका वौद्धिक रचाकार है।

2 जैविक प्राणियो का आन्तरिक समायोजन। (Internal adaptedness of organic beings) "the argument that adaptation of part to whole, of whole to environment, and of organ to function implies design was forcible" [2]

टेनेन्ट का कथन है कि यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रत्येक प्राणी के अगो की बनावट एक लम्बे समय के सफल एव मन्दगति के परिवर्तन का परिणाम है फिर भी यह एक वाहय रचनाकर्ता की अनुपस्थिति को प्रमाणित नही करता। प्राकृतिक चयन का सिद्धान्त प्रयोजन मूलक प्रमाण के साथ अनुपयुक्त

1 Tennent's cosmic Teleology Philosophical Theology reprinted in the Existence of God' ed John Hick P 122

2 Tennent's cosmic Teleology' Philosophical Theology reprinted in the Existence of God' ed John Hick P 126

(incomplitable) नही है। टेनेन्ट के अनुसार विश्व की पूर्णत सफल विकासवादी प्रक्रिया की ईश्वर की आस्तिक कल्पना के बिना व्याख्या सम्भव नही है—

"But it may be observed that, in the absence either of a mechanical or of an "internal" explanation of variation, room is left for the possibility of that variation is externally pre-determined or guided, so that not only the general trend of the organic process, but also its every detail, may be pre-ordained or divinely *controlled* "[1]

टेनेन्ट कहते है कि यन्त्रवाद के द्वारा हम व्याख्या कर सकते है कि जीव (species) हमेशा रचनाकार की कल्पना के विना वातावरण के साथ अच्छे अनुकूलन के दबाव मे रहते हैं लेकिन इसके बावजूद पूरी प्रक्रिया व्याख्याविहीन रहती है और इसकी व्याख्या तभी की जा सकती है जब ईश्वर वादी कल्पना का सहारा लिया जाय।

3 अजैविक तत्वो के जीवन की प्रति उपयुक्तता 'The fitnesass of the inorganic to minister to life-"The teleologist of today, however, would rather call attention to the continuity of apparent purposive nesas s between the two resalms, or to the dependence of adeptaiweness on in the one on adeptaveness s in the other" [2]

---

[1] Tennent's cosmic Teleology' Philosophical Theology reprinted in the Existence of God' ed, John Hick P 122

[2] Tennent's cosmic Teleology' Philosophical Theology reprinted in the Existence of God' ed John Hick P 128-129

जीवन की उत्पत्ति एव धारण करने मे भौतिक ससार की उपयुक्तता है। विश्व की उपयुक्तता निश्चित अजैविक दशाओ पर निर्भर करती है।

"The fitnesas s of our world to be the home of living beings depends upon certain prionary conditions, astronomical, theremal, chemical, etc . thus esas essential to the maintenance of life, their makes the inorganic world seems in some respects, comparable with an organism It is suggestive of a formative principle But if there be such a principle, it is not conceivable after analogy with the life and mind of organisms, and can not be said to be intrinsic or internal, because the inorganic at the at the molar and phenomenal level of explanation is devoid of life, and-at any level of explanation is devoid of intelligence and foresign, unless cosmic teleology is invoked, the intricate adaptation that have been mentioned must be referred by the dualist to a mechanically controlled concourse of atoms, and by the pluralistic spiritualist to conative monads that are no more capable of conspiration than are inert particlesas[1]

टेनेन्ट के अनुसार अवसर के द्वारा विश्व का अस्तित्व मे आना एक ओछी सम्भावना है। जैविकसत्ता अजैविक विश्व के बाद की अवस्था है। अजैविक प्रक्रिया के द्वारा जीवन सम्भव हो सका है। अजैविक प्रक्रिया से आशय जीवन के लिए उपयुक्तता का विकास है। दूसरी अजैविक प्रक्रिया के द्वारा जैविक सत्ता

---

1 Tennent's cosmic Teleology' Philosophical Theology reprinted in the Existence of God' ed John Hick P 134

अस्तित्व मे आई। ओर यह एक रचनाकार को सूचित करता है क्योकि यहॉ जीवन धारण करने मे बहुत अधिक जटिलताए है–

4 प्रकृति का निरीश्वरवादी मूल्य विश्व मूल्यो का वाहक है। टेनेन्ट विशेष रूप से निरीश्वरवादी मूल्यो का उल्लेख करता है। प्रकृति सब जगह सुन्दरता उत्पन्न कर रही है–

"Nor can nature's mechanism be regarded as a sufficient cause of the adaptiveness to our subjectivity in which beauty consists, foi we way still ask why Nature's mechanisms affects us in such wise that the deem her subline and besautiful, since mere mechanism, as such, is under no universal necesas sity to do so, and what we may call human mechanisms usually fail to do so [1]

"Nature's besauty is of a piece with the world's intelligibility and with its being a theatre for moral life, and thus for the case for theism is strengthened by aerthetic considerations

विश्व की यन्त्रवादी व्याख्या विश्व के निरीश्वरवादी मूल्यो की व्याख्या नही कर पाता। यदि हम यन्त्रवादी व्याख्या को स्वीकार कर ले तो यह विश्व मे निरीश्वरवादी मूल्यो के नियमो का पालन नही करता, जो विश्व को बौद्धिक मानता है।

5 नैतिक मूल्यो के अनुभव के विश्व साधन रूप मे विश्व मे मनुष्य का नैतिक स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यह विश्व का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसकी व्याख्या की भी आवश्यकता पडती है, और इसकी व्याख्या टेनेन्ट के अनुसार केवल ईश्वरवाद मेप्राप्त होती है–

1 Tennent's cosmic Telcology' Philosophical Theology, reprinted in the Existence of God' ed John Hick P 135

"It my further be observed that in so far as the mechanical stability and the analytic intelligibility of the inorganic world are concerned, beauty is a superfluity Also that in the organic world aesthetic pleasingness of calon etc Seems to possess survival value on but a limited scale, and then is not to be identified with the complex and intellectualized aesthetic sentiments of humanity, which apparently have so survival value [1]

ये सभी तथ्य ईश्वरवाद की कल्पना के लिए सर्वाधिक सम्भव व्याख्या है। टेनेन्ट कहता है कि विश्व के प्रत्येक पक्ष की उपरोक्त वर्णित बिन्दु की अलग अलग व्याख्या ईश्वरवाद की कल्पना के बिना की जा सकती है, परन्तु जटिल विश्व के सभी पहलुओ की समष्टि के रूप मे व्याख्या ईश्वरवाद को स्वीकार किये बिना नही की जा सकती। ईश्वरवाद सम्पूर्ण विश्व की सर्वाधिक सभव व्याख्या है।

टेनेन्ट के अनुसार यह अधिक सभव है कि यहा एक रचनाकर्ता है, बजाय इसके कि वह नही है। लेकिन सभावना सम्बन्धात्मक अवधारणा है। यह विश्व की तरह विशिष्ट (Unique) तथ्य पर लागू नही किया जा सकता। वास्तव मे, सभावना की यह अवधारणा भौतिक और व्यावहारिक विज्ञान मे प्रयोग की जाती है जिसमे उदाहरणो की बहुलता है लेकिन जहाँ एक ही उदाहरण है विश्व, तो यह अवधारणा यहा असफल हो जाती है।

---

1 Tennent's cosmic Teleology' Philosophical Theology, reprinted in the Existence of God' ed John Hick P 134

हम विश्व की व्याख्या दो प्रकार से करते है—

(1) आस्तिक (Theistic) और

(2) प्राकृतिक (Naturalistic)

इन दोनो प्रकार की व्याख्याओ की कुछ कमियॉ एव अच्छाइयॉ है। किस आधार पर यह दावा किया जा सकता है कि एक दूसरी से अधिक सभव है? क्या हम सामान्यत इनके पक्ष व विपक्ष के बिन्दुओ की गणना कर सकते है? क्या हम यह कह सकते है कि ईश्वरवाद के समर्थन के पक्ष मे दस बिन्दु है और विपक्ष मे आठ बिन्दु है, इसलिए ईश्वरवाद दो बिन्दुओ से जीत जाता है। स्पष्ट ऐसी यान्त्रिक प्रक्रिया सभव नही है। ऐसे विषयो का निर्णय अनुभूतिपरक एव वैयक्तिक होता है और सभावना के विचार को यदि स्वीकार किया जाता है तो इसका बहुत वस्तुनिष्ठ तात्पर्य नही है।

प्रयोजनमूलक प्रमाण को आधुनिक समय मे (recent) नया योगदान *रिचर्ड टेलर* ने दिया है। उन्होने अपनी पुस्तक मेटाफिजिक्स (Metaphysics) मे प्रयोजनमूलक प्रमाण का ज्ञानमीमासीय पक्ष एक नये रूप मे प्रस्तुत किया है। उनके तर्क के दो स्तर है प्रथम स्तर मे वे एक रचना (Design) का उदाहरण देते है। और अपने तर्क के दूसरे स्तर मे उसी पद्धति को स्थापित करते है कि हमारी ज्ञानेन्द्रिया भी रचित है। अपने तर्क के प्रथम स्तर पर *टेलर* कहते है—

"Suppose then that you are riding in a railway coach and glancing form the window at one of the stops, you see numerous white stonesas scattered about on a small hillside near the train in a pattern resembling these letters THE BRITISH RAILWAYS WELCOME YOU TO WALES Now you could scarcely doubt that these stones do not just accidentally happen to exhibit that pattern, your would infact feel quit certain that they were purposefully *arranged* that way to convey on intelligible message At the same time, however, you could not prove, just from a consideration of their arrangement alone It is possible-at lesast logically so that there was no guiding hand at all in back of this pattern, that it is simply the result of the operation of inanimate nature It is possible that the stones, one by one, rolled down the hill and, over the course of centuries, finally ended up in that interesting arrangement, or that they came in some other accidental way to be so related to each other For surely the mere fact that some thing has an interesting or striking shape or pattern and thus *sesams* purposefully arranged, is no proof that it is

Here, however, is the important point which is esasy to overlook, namely, that if, upon seeing form the train window a group of stones arranged as described, you were to conclude that you were entering Wales, and if your sole resason for thinking this, whether it was infact good evidence or not, consistently with that, suppose that the arrangement of the stones was accidental, you would in fact, be presupposing that they were arranged that way by an

intelligent and purposeful being or beings, for the purpose of conveying a certain message having nothing to do with the stonesas themselves as, Another way of presupposing the same point is, that it would be *irrational* for you to regard the arrangement of the stones as evidence that you were entering Wales, and at the same time to suppose that they might have come to that arrangement accidentally, that is as the result of the ordinary interactions of natural or physical *forces*[1]

इस विवरण मे सन्देश एव सन्दशवाहक के बीच एक तार्किक सम्बन्ध है। कोई सन्देश, सन्देशवाहक के बिना सम्भव नही हो सकता। टेलर के उपरोक्त परिच्छेद मे पत्थरो की व्यवस्था हमे एक सूचना देती है, यह महत्वपूर्ण नही है कि यह किस भाषा मे लिखा हुआ है। यदि हम पत्थरो के सन्देश का अनुभव करते है कि हम वॉल्स मे प्रवेश कर रहे है। हमे सन्देश देने वाले का भी अनुभव अवश्य करना चाहिए। जहॉ कोई सन्देश होता है, वहा सन्देशवाहक भी होता है। हम सन्देश वाहक के विना कोई सन्देश (सूचना) नही प्राप्त करते और यदि हम पत्थरो की व्यवस्था को एक आकस्मिक सयोग का परिणाम, मन्द विकासवादी प्रक्रिया का परिणाम मान ले तो हमे इस सन्देश का अनुभव नही होना चाहिए कि हम वॉल्स मे प्रवेश कर रहे है। इसलिए या तो पत्थर उद्देश्यपूर्ण ढग से एक सन्देश देने के लिए व्यवस्थित किये गये है कि यहा से वाल्स का क्षेत्र विकास की मन्द प्रक्रिया द्वारा अथवा यह कि वे किसी सन्देश के लिए प्रयुक्त किये गये है।

1 "Metaphysics" PP 96 97 quoted in Argument for the Existence of God" by John Hick PP 22-23

लेकिन इस सम्बन्ध मे इस सन्देश का कोई उत्तरदायित्व नही है। यदि हम इरा सन्देश का अनुभव करते है तो हमे इसे किसी रचनाकार की रचना के रूप मे गानना चाहिए और यदि हग पत्थरो की व्यवस्था को एक सयोग मान ले तो हमे इस सन्देश को वास्तविक रूप से सत्य सन्देश के रूप मे अनुभव नही कर सकते है कि हम वाल्स क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे है। इसलिए, हम एक सन्देश वाहक की कल्पना करने को विवश है। जिसने पत्थरो को एक विशेष ढग से व्यवस्थित किया है।

अपने तर्क के दूसरे स्तर पर टेलर का कथन है कि जैसे हम पत्थरो की व्यवस्था को किसी प्रयोजन का परिणाम मानते है, जब हम सन्देश को वास्तविक सन्देश के रूप मे ग्रहण करते है। उसी तरह हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो द्वारा इस विश्व के बारे मे जानकारी का दावा करते है। यदि हम ज्ञानेन्द्रियो के ज्ञान के दावे को वास्तविक ज्ञान के रूप मे ग्रहण करते है तो हमे उसे (ज्ञान को) किसी उद्देश्य का परिणाम मानना चाहिए। और यदि हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो को विकासवादी प्रक्रिया का परिणाम मानते है तो हमे ज्ञान सम्बन्धी इनके दावे का अनुभव नही होना चाहिए। लेकिन हम सामान्य जीवन मे ज्ञान के इस दावे का अनुभव करते है और इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे (ज्ञानेन्द्रियॉ) किसी उदेदश्यपूर्ण रचना का परिणाम है। ज्ञान के दावे का अनुगव करना और उसे किसी रचना का परिणाम न मानना, अथवा उसे किसी सयोग अथवा विकास वादी प्रक्रिया का परिणाम गानना, दोनो परस्पर विरूद्ध है।

टेलर इस तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट करते है–

"Just as we supposed that the stones on the hill told us that we were entering *Wales* a fact having nothing to do with the stones themselves - so we also suppose that our senses in some manner tell us what is true, at lesast sometimes The stones on the hill could, to be sure, have been an accident, in which case we cannot suppose that they really tell us matching at all So also, our senses and all our faculties could be accidental in their origins, and in that case they do not really tell us any thing either But the fact remains, that we do trust then, without the slightest reflection on the *matter*[1]

इसलिए टेलर निष्कर्ष निकालता है कि–

"We saw that it would be irrational for anyone to say *both* that the marks be found on a stone had a natural, non purposeful origin and *also* that they reveal some truth respect to something other than themselves, something that is not merely inferred form than One cannot rationally believe both of these things So also, it is now suggested it would be irrational for one to say *both* that this sensory and cognitigve facultiesas had a natural, non-purposefull origin and *also* that they reveal some truth with respect to some thing other that themselves, something that is not merely inferred form then If their origin can be entirely accounted for in terms of chance variations, natural selection, and so on, without supposing that they some how embody and express the

[1] Metaphysics P 100 quoted in Arguments for the existence of God' by Jhon Hick P 23

purposes of some creative being then the most we can say of them is that they exist, that they are complex and wonderous in their construction, and are perhaps in other respects interesting and remarkable We can not say that they are entirely by themselves, reliable quides to any truth whatever save only what we can be inferred form their own structure and arrangement If one the other hand, we do assume that they are quides to some truth having nothing to do with themselves then it is difficult to see how we can, consistently with that supposition, believe then to have arisen by accident or by the ordinary workings of purposeless forces, even over the age of the *time* [1]

परन्तु टेलर अपने तर्क मे समानान्तरवाद (parallelism) का सहारा लेते है। हम समानान्तरवाद का प्रयोग वही करते है जब कोई दो वस्तुए समान प्रकृति एव गुण से युक्त हो। लेकिन टेलर के समानान्तरवाद मे दो तथ्य अपने प्रकृति एव गुण मे परस्पर भिन्न है। एक तथ्य मानव रचना के उत्पादन (पत्थरो की व्यवस्था) के रूप मे है जबकि दूसरा तथ्य प्रकृति के उत्पाद (ज्ञानेन्द्रियो) के रूप मे है। चूँकि ये तथ्य समान प्रकृति एव गुण के नही है इसलिए उनका सन्देश (सूचना) भी समान नही हो सकती। इस सन्देश का भाव भी समान नही हो सकता। एक सन्देश मानवीय सवेगो (intentions) का है और दूसरा सन्देश प्राकृतिक जैविक विकास का है। प्राकृतिक जैविक विकास सम्बन्धी उत्पाद मे किसी रचनाकार का भाव नही है। हमे

1 "Metaphysics Pp 100-101 quoted in 'arguments for the Existence of God by John Hick P 24

प्राकृतिक तथ्यो एव रचनामूलक तथ्यो के बीच भेद रखना आवश्यक है।

लेकिन यह समानान्तर कितना राबल है। जॉन हिक के अनुसार—एक सन्देश प्रदान करने वाले पत्थरो की व्यवस्था जो वैसा सन्देश है जो अनिवार्य रूप से सूचनामूलक इरादे से बनाया गया है। लेकिन हमारी आखे सन्देश नही है। और यदि हम इसकी सूचना के बारे मे बात करते है तो हम इसे रूपक अलकार (Metaphor) के रूप मे प्रयोग करते है।

यह सत्य है कि हम विश्व को देखकर कुछ जानकारी प्राप्त करते है लकिन इससे यह दावा नही कर सकते कि हमारी ऑखे रचित (Designed) है यह उतना ही बुरा है जितना यह दावा करना कि एक पेड की टहनी जो जगल मे घूमते हुए प्राप्त होती है और घूमने की छडी के रूप मे प्रयोग की जाती है, और फिर कोई दावा करता है कि यहॉ किसी घूमने की छडी का निर्माता अवश्य होना चाहिए जो इसे अपने कार्य को बिखरे रूप मे गवारू ढग रो छोड दिया है।

टेलर का तर्क रूचिकर और विचारो को उत्तेजित करने वाला है फिर भी यह भ्रामक तर्क का एक रूप है।हिक के अनुसार टेलर का कथन है कि चूँकि हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो को उस रूप मे प्रयोग कर सकते है जिस रूप मे कि हम पहाडी क्षेत्र मे पत्थरो के द्वारा लिखे हुए शब्दो को प्रयोग करते है जो हमे कुछ सूचना प्रदान करते है। हमे अपनी ज्ञानेन्द्रियो को उस रूप मे जानना चाहिए जिस रूप मे बौद्धिक प्राणी के रूप मे हम

यह जानते है कि "द ब्रिटिश रेलवेज वेलकम्स यू टु वाल्स यही तर्क है। इसकी कमी यह है कि हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो अथवा अनुभव को उस रूप मे ग्रहण नही कर सकते जिस रूप मे कि हम शव्दो के एक क्रम मे ग्रहण करते है। हमारे पास यह विश्वास करने के लिए कि ज्ञानेन्द्रियॉ एक बौद्धिक प्रयोजन का परिणाम है, कोई *समानान्तर* (Parallcl) तर्क नही है इसके विपरीत जैव वैज्ञानिक इस रूप मे व्याख्या करते है कि विभिन्न जानवरो एव प्राणियो की *ज्ञानेन्द्रियॉ* (Sense organs) विकास की प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा विकसित हुई है। इस कथानक (Story) के अनुसार वर्तमान रूप उदाहरण के लिए मनुष्य की ऑख एक दैवी तत्व की चेतना मूलक रचना का परिणाम है अपितु यह लाखो वर्षो के विकासवादी यन्त्रवाद का परिणाम है।

अन्त मे, ईश्वर के अस्तित्व के लिए प्रथम कारण परक प्रमाण सफल रहा, और हमे एक प्रथम कारण को स्वीकार करने का इशारा करता है। आपातिक प्रमाण भी सफलतापूर्वक केवल यह दिखा सका कि एक अनिवार्य सत्ता है, प्रयोजनमूलक प्रमाण भी यदि सफल है तो एक वैश्विक रचनाकार के अस्तित्व की सूचना देता है। ये सभी प्रमाण यह नही सिद्ध करते कि वह रचनाकार ईश्वर है जिसमे वे सभी विशेषताए है, जो एक नैतिक एकेश्वरवादी ईश्वर मे है।

अत हग कह सकते है कि जिस ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार करते हुए हम उसके अस्तित्व के प्रमाणित करने का प्रयास कर रहे है उसमे उपरोक्त परम्परागत प्रमाण उसके अस्तित्व को प्रमाणित करने मे असफल है।

अध्याय-तीन

ईश्वर के अस्तित्व के लिए नैतिक युक्तियाँ

अध्याय–तीन

ईश्वर के अस्तित्व के लिए नैतिक युक्तियाँ

ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए नैतिक तर्क अत्यन्त लोकप्रिय तर्क है। इनकी लोकप्रियता का कारण प्राकृतिक धर्मशास्त्र के परम्परागत प्रमाणो की ह्यूम एव काट के द्वारा की गई गम्भीर आलोचना है। काट के समय से लेकर आज तक ईश्वर के अस्तित्व के लिए आधार प्रस्तुत करने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रयास किये गये है जिनमे न केवल इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि एक विश्व है, अथवा विश्व मे एक व्यवस्थित क्रम है अपितु यह तथ्य भी कि विश्व का बहुत ही विशिष्ट गुण है—मानवीय नैतिक अनुभव। यह विश्वास किया जाता है कि यदि हम ईश्वरवाद की वस्तुनिष्ठ सत्यता मे विश्वास नही करते तो एक दैवीतत्व मे विश्वास करना आवश्यक हो जाता है क्योकि बिना इसके नैतिकता का आधार ढह जाता है, या सम्भव नही है। यह तर्क किया जाता है कि केवल आस्तिक विश्वास ही नैतिक व्यवहार के ठोस पर्याप्त सवेगो का आधार है और आस्तिक विकास के बिना उचित और अनुचित के बीच भेद करने का सन्तोषजनक वस्तुनिष्ठ आधार प्राप्त नही हो सकता न ही किसी सर्वश्रेष्ठ (Supreme) नियामक (lowgiver) के किसी नैतिक नियम की स्थापना ही हो सकती है।

नैतिक तर्क ईश्वर के अस्तित्व का उतना अधिक दावा नही करता जितना इस पर कि हमे ईश्वर के अस्तित्व पर निश्चित

रूप से विचार करना चाहिए। यह आधुनिक प्रयास कि ईश्वर मनुष्य के नैतिक अनुभव द्वारा जाना जाता है, इमेनुअल काट से प्रारम्भ होता है, जिसने अपनी पुस्तक क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन' मे तर्क किया है कि ईश्वर का अस्तित्व नैतिक तर्क की एक पूर्वमान्यता है। काट के लिए ईश्वर के अस्तित्व का आशय किसी ऐसी वस्तु से नही है जिसे हम कठिनाई के साथ जान सके।

काट के अनुसार ईश्वर नैतिक जीवन की पूर्वमान्यता है। काट ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध मे इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचा, यह विचारणीय है।

काट का तर्क इस प्रकार है—

यद्यपि सद्गुण (Vırtue) आवश्यक (ıntrınsıc) शुभ है, परन्तु यह पूर्ण अथवा परमशुभ नही है। पूर्ण शुभ वह है जिसमे सदाचार के साथ–साथ आनन्द (happınesas) का भी समावेश हो। काट का कथन है कि सदाचार (Vırtue) और आनन्द (Happınesas) न तो अवधारणात्मक रूप से सम्बन्धित है और न ही कारणात्मक रूप से। वह कर्म सिद्धान्त की बात करता है जिसके अनुरार जो जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार फल प्राप्त करता है (जैसी करनी वैसी भरनी)। चूँकि सदाचार (Vııtuc) आनन्द से सम्बन्धित है और उनका सम्बन्ध न तो कारणात्मक है और न ही अवधारणात्मक, इसलिए इसके लिए ईश्वर की पूर्वमान्यता की आवश्यकता है, जो सदचार को आनन्द से सयुक्त करता है। इस विश्व मे जब भी हम दो वस्तुओ को

साथ–साथ पाते है तो हम जानते है कि वे या तो कारणात्मक रूप से सम्बन्धित है अथवा अवधारणात्मक रूप से। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने हेतु हम अवधारणात्मक सम्बन्ध का उदाहरण लेते है–एक व्यक्ति श्याम (मनुष्य) की अवधारणा से हम जानते है कि श्याम एक मानव प्राणी है, कुत्ते की अवधारणा से हम यह जानते है कि कुत्ता एक जानवर है, त्रिभुज की अवधारणा से हम जानते है कि इसकी तीन भुजाए है। अब हम कारणात्मक सम्बन्ध के उदाहरणो को लेते है–धुऑ आग के साथ हमेशा विद्यमान रहता है क्योकि दोनो कारणात्मक रूप से सम्बन्धित है। लेकिन इस प्रकार का सम्बन्ध सदाचार (Vırtue) का आनन्द के साथ नही पाया जाता। हम सदाचार को आनन्द रहित एव आनन्द को सदाचार रहित विचार (Thınk) कर सकते है। हम जानते है कि न तो सदाचार (सद्गुण) (Vırtue) आनन्द का कारण है और न ही आनन्द सदाचार का कारण है। लेकिन सदाचार को आनन्द के साथ रहना चाहिए यह जैसी करनी वैसी भरनी का सिद्धान्त है, जो अपनी पूर्णता के लिए ईश्वर की पूर्वमान्यता की अपेक्षा करता है, क्योकि हम विश्व मे देखते है कि यहॉ ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो सद्गुणी है परन्तु प्रसन्न (सुखी) नही है। काट विचार करता है कि लोगो को केवल नैतिक ही नही होना चाहिए, बल्कि सुखी (happy) भी होना चाहिए। वह यह विचार नही करता कि नैतिक होना सुखी होने का ही प्रतिरूप (ıdentıcal) है। वह विचार करता है कि प्रसन्नता को होना आवश्यक है। अब काट विचार करता है कि सुखद नैतिक व्यक्ति सर्वोच्च शुभ (hıghesat good) है जो ससार मे प्राप्त किया जा सकता है, और जिससे रार्वोच्च शुभ प्राप्त होना

चाहिए। इसलिए यदि यहाँ नैतिकता और आनन्द का सयोजन होता है तो यहाँ प्रकृति का एक रचयिता अवश्य होना चाहिए जो नैतिक व्यक्तियो की प्रसन्नता की व्यवस्था कर सकता है। पुन काट कहता है कि सर्वोच्च शुभ के लिए आवश्यक है कि हम ईश्वर के अस्तित्व को पूर्वमान्यता के रूप मे स्वीकार करे जो नैतिक व्यक्तियो के परमसुख की जिम्मेदारी विश्व के दैवी नियन्त्रण (divine control) द्वारा लेगा।

सफलता के लिए आनन्द (happinesas) क्यो आवश्यक है? मान लीजिए सदगुणी (Virtuesa) नैतिक व्यक्ति की प्रसन्नता अथवा सफलता का कोई आश्वासन (guarantee) न हो कि सद्गुणी व्यक्ति सुखी होगा अथवा सफल होगा तो वह सद्गुणी क्यो होना चाहैगा? वह अपने वर्त्तमान सुखद जीवन का बलिदान क्यो करना चाहैगा? अन्य लोगो की भाँति वह भी अपने जीवन मे बुरे साधनो द्वारा समृद्ध रहैगा। लेकिन ऐसा वह कभी नही करता क्यो? क्योकि वह जानता है कि यद्यपि उसने इस जीवन मे प्रसन्नता अथवा सफलता भले ही नही प्राप्त कर सका है। वह उस प्रसन्नता अथवा सफलता को अपने दूसरे जीवन मे अथवा यहाँ के जीवन के बाद प्राप्त कर सकेगा, जो यह विश्वास दिलाता है कि वह प्रसन्नता प्राप्त करेगा, वही ईश्वर है।

काट के अनुसार इस जीवन के बाद आत्मा की अमरता और ईश्वर यहाँ ये दो नैतिकता की पूर्वमान्यताए है। यदि सद्गुण आनन्द युक्त नही है तो कोई भी व्यक्ति सद्गुणी नही होना चाहैगा। जब एक सैनिक युद्ध भूमि मे अपना बलिदान करता है तो वह उस समय आनन्द (happinesas) नही प्राप्त

करता लेकिन वह अच्छी तरह जानता है कि वह आनन्द को इस जीवन के बाद अवश्य प्राप्त करेगा। यदि ऐसा आश्वासन न हो कि सद्गुणी व्यक्ति सुखी होगा, तो कोई व्यक्ति सद्गुणी नही बनना चाहैगा। हम अपने दैनिक जीवन मे देखते है कि यहॉ बहुत से सद्गुणी व्यक्ति है, जो अपने पूरे जीवन मे अत्यधिक कष्टो का सामना करते है और थोडा सा भी सुख नही प्राप्त कर पाते। तो वे ऐसा क्यो होना चाहते है, क्योकि वे जानते है कि सुख (happinesas) निश्चित रूप से प्राप्त होगा इस जीवन मे या अगले जीवन मे। और इसके लिए आवश्यकता है ईश्वर की पूर्वमान्यता की, अन्यथा कोई भी व्यक्ति सद्गुणी (Virtuesa) नही होना चाहैगा।

अब हम पूर्ण शुभ की बात करते है जिसका अस्तित्व होना चाहिए। लेकिन जो होना चाहिए उसे अनिवार्यत सम्भव होना चाहिए, और इसलिए इसकी सभावना की अनिवार्य शर्ते है कि उसे वास्तव मे होना चाहिए। हम देखते हैं कि सद्गुण एव सुख (happinesas) मे अनिवार्य सम्बन्ध नही है न तो तार्किक रूप से और न ही सामान्य कारण कार्यरूप मे। तार्किक सम्बन्ध इसलिए सम्भव नही है, क्योकि सद्गुण की व्याख्या सुखद (happinesas) के पदो मे नही की जा सकती है और इसमे प्रकृति के सामान्य नियमो का कारणात्मक सम्बन्ध भी नही है। तब स्थिति है—पूर्ण शुभ (complete good) को अस्तित्ववान होने मे समर्थ होना चाहिए, क्योकि इसे अस्तित्ववान होना चाहिए। इसका एक पक्ष (factor) पूर्ण सद्गुण सभी परिस्थितियो मे सम्भव है। लेकिन दूसरा गुण (पक्ष) उसी अनुपात मे सुख (happinesas) की प्राप्ति का अनुभव तभी किया जा सकता है यदि प्रकृति की गति अच्छी

प्रकार से नियन्त्रित हो। इसके होने का विचार केवल एक ही माध्यग से किया जा सकता है जबकि हम यह कल्पना करे कि प्रकृति एक उद्देश्यपूर्ण, परोपकारी और नैतिक सत्ता पर आधारित है जो जीवन के लम्बे दौर–(भविष्य जीवन या कई जीवन) मे यह व्यवस्था करता है सद्‌गुणी उचित अनुपात मे सुख (happinesas) के द्वारा पुरष्कृत होगा। इस प्रकार काट के लिए ईश्वर मे विश्वास प्रमाणित होता है क्योकि बिना इसके हम सद्‌गुण को सुखद (happinesas) नही मान सकते। (जिससे सर्वोच्च शुभ सम्बन्धित है)।

काट प्रत्यक्षत यह दावा नही करता कि इन आधारवाक्यो से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध होता है, अपितु यह दावा करता है कि नैतिकता के दावे के लिए दैवी अस्तित्व की पूर्वमान्यता आवश्यक है। काट के तर्क के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार स्पष्ट किये जा सकते है–

प्रथम, नि श्रेयस (Summumbonum) सुख की उचित मात्रा के साथ सर्वोच्च शुभ है और यह नैतिकता का अन्तिम लक्ष्य (highesat end) है–

"The highesat good is the necesasary highesat end of a morality determined will and a true object there of "[1]

द्वितीय, चूँकि 'चाहिए' (oughat) सकता' (can) की अपेक्षा करता है–यह इस तथ्य से निगमित होता है कि शुभ सकल्प

1 क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन ट्रासलेटेड, एल० डब्ल्यू' वेक (L W Beck) (न्यूयार्क लिबरल आर्टस प्रेस 1956) पृष्ठ–130।

(good will) सार्वोच्च शुभ ला सकती है जो सुख (happinesas) की उचित मात्रा से युक्त होता है।

इस प्रकार यह है—"a necesasary connected with duty as a requisite to presauppose the possibility of this highesat good."[1]

तीसरा, यद्यपि सर्वोच्च शुभ अवश्य सम्भव होना चाहिए, और अनुभव मे आना चाहिए लेकिन यह हमारी शक्ति के अन्दर नही हैं क्योकि हम सद्गुण को स्वय प्राप्त कर सकते है, लेकिन इसके साथ सुख (happinesas) को प्राप्त नही कर पाते। यह हमारे बस की बात नही है, यह पूर्णशक्तिशाली के बस की बात है।

चौथा, एक बौद्धिक (rational) और नैतिक सत्ता का होना आवश्यक है जो नैतिकता एव सुख (happinesas) मे परस्पर मेल करा सके। *इसलिए—*

"The existence is postulated of a cause of the whole of nature, itself distinct from nature, which contains the ground of the exact coincidenceesa of happinesas with morality."[2]

"It is our duty to promote the highesat good, and it is not merely our privilege but a necesasity connected with duty as a requisite to presauppose the possibility of this highesat good. This presaupposition is made only under the condition of the existence of God, and this condition,

---

[1] पूर्वोक्त पृष्ठ–130।
[2] पूर्वोक्त पृष्ठ–129।

inseparably connects this supposition with duty Therefore, it is morally necesasary to assume the existence of God "[1]

सी० डी० ब्रॉड ने कांट के तर्क को इस प्रकार रखा है—

"The complete good is composed of virtue with the appropriate amount of happinesas, Now we can say of the complete good that it oughat to exist But what oughat to be must be possible, and therefore the necesasary conditions of its possibility must be actual Now there is no necesasary connection between virtue and happinesas either logically or by way of ordinary natural causation There is so logical connection, because virtue cannot be defined in turms of happinesas, ---------And there is no causal connection by the ordinary laws of Nature-------The complete good must be capable of existing, since it oughat to exist One of its factors, viz perfect Virtue is possible under all circumstancesa, But the other factor, viz, The desaerved amount of happinesas, will be realized only if the course of Nature be deliberately over-ruled so as to secure it And the only way in which we can conceive this happening is by supposing that Nature is dependent on a powerful, benevolent, and moral being, who arrangesa that in the long run Virtue shall be regarded by the appropriate amount of happinesas "[2]

---

1 काट–क्रिटीक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन ट्रास लेविस व्हाइट बेक (इण्डियन आयोलिस इण्डियन लाइब्रेरी ऑफ लिवरल आर्टस 1956) पृ0–166 क्वोटेड इन गाड एण्ड रीजन द्वारा प्रकाशित एल० मिलर पृ०–82।

2 फाइव टाइपरा ऑफ एथिकल फीयरी।–सी0डी0बॉड रूटलेज एण्ड केगन पाल (Routledge and Kegan Paul) लि० पृष्ठ 140–141

आगे चूँकि सुख (happinesas) का सद्गुण के साथ सयोग इस जीवन मे नही हो पाता, इसे नित्यता (termity) (अन्य जीवन या कई जीवन मे) मे प्राप्त किया जा सकता है, और इसलिए अमरता की पूर्वमान्यता घनिष्ठ रूप से दैवी अस्तित्व की पूर्वमान्यता के साथ जुडी हुई है।

काट के अनुसार, नि श्रेयस (Summumbonum) (सुख से सयुक्त सद्गुण) सम्भव है, और इसकी सम्भाव्यता नैतिक और सर्वशक्तिमान सत्ता ईश्वर की सम्भावना पर निर्भर करती है। लेकिन जॉनहिक का प्रश्न है कि इस सन्दर्भ मे 'सम्भव'(Possible) का क्या अर्थ है? इसका अर्थ मात्र 'तार्किक सभावना' (logical-possible), है। यद्यपि यह अनुमान किया जाता है कि नि श्रेयस् सम्भव है तो इसका तात्पर्य यह नही है कि एक आदर्श वस्तुस्थिति अथवा एक ऐसी सत्ता है जिसके पास नि श्रेयस लाने की शक्ति है। जो भी वाछित है वह नि श्रेयस की अवधारणा है और यह आत्मव्याघाती नही है। इस प्रकार नि श्रेयस की केवल तार्किक सभावना दैवी अस्तित्व की पूर्वमान्यता की अपेक्षा नही करता। जॉनहिक एक गम्भीर प्रश्न उठाते है कि– नैतिक दायित्व के अन्दर नि श्रेयस का अनुभव करने वाला कौन है–मनुष्य अथवा ईश्वर? निश्चित रूप से, ईश्वर नही है, क्योकि हम उसके अस्तित्व की स्थापना करते है। इसलिए नि श्रेयस का अनुभव करने वाला नैतिक दायित्व के अन्दर मनुष्य है। लेकिन काट ने पहले ही कहा हैं कि मनुष्य नि श्रेयस का अनुभव नही कर सकता, क्योकि इसके दो पक्ष है–

(1) सद्‌गुण और (2) सुख (happinesas) और केवल सद्‌गुण ही हमारी शक्ति के अन्दर है, हम इसे प्राप्त कर सकते है, लेकिन हम सद्‌गुण के साथ सुख का अनुभव नही कर सकते क्योकि यह हमारी शक्ति की सीमा मे नही है। चूँकि निःश्रेयस (Summumbonum) का दूसरा भाग हमारे वश मे नही है, इसलिए हम इसे नही ला सकते, इसकी वास्तविक सम्भावना सम्भव नही है।

"Now one ground on which, according to Kant, a state of affairs can be known to be factually possible is that some one is under a moral obligation to bring it about For 'oughat' impliesa 'can', so that if I oughat to create a certain state of affairs it follow that I can create it, and therefore, that it can exist The quesation, then, is who is under a moral obligation to realise the sumumbonum clearly we can not at this point suggesat God as the answer, for it is God whose existence we are seeking grounds affirming It must then be man But it is an esasential part of Kant' argument that man himself doesa not have the power to bring about the summumbonum-for which reason we have to postulate God Man's obligation is to do all that he can towards the realization of the summumbonum But the Summumbonum contains two distinct elements the existence of good willis, and the proportioning of happinesas to desaert

Such that either could be realized without the other, It could be the case that there is moral goodnesas, but no correlation between the good will and good fortune, and

conversely it could be the case that good fortune is distributed according to moral desaert but that no good wills exist And our obligation to do all we can to realize the summumbonum is an obligation to become good wills from, which it follows that it is possible for us to do so We are not however under obligation to bring about the second part of the summumbonum, for this is not within our power, and therefore there is no implication from only obligation laying upon us, concerning the factual possibility of this second part or, accordingly, of the summumbonum as a whole Nor therefore is there any proper ground is our moral duty for postulating the existence of God as the agent necesasary to bring about the summumbonum "[1]

काट के तर्क के साथ दूसरी कठिनाई यह है कि यह एक रूप मे नही है। काट के अनुसार निश्रेयस सम्भव है, क्योकि मनुष्य इसका अनुभव करता है, लेकिन काट यह भी कहता है कि मनुष्य स्वय निश्रेयस का अनुभव नही कर सकता। इस सम्भावना पर ईश्वर का कब्जा है। इसलिए काट यह विचार व्यक्त करता है कि मनुष्य निश्रेयस का अनुभव कर सकता है और नही भी कर सकता है।

ब्रेन डेविस (Brain Davis) अपनी पुस्तक ऐन इन्ट्रोड्क्शन टु द फिलॉसफी ऑफ रिलिजन' मे काट के तर्क को स्वीकार करने मे दो आपत्तियॉ प्रस्तुत करते है—

1 Argument's for the Existence of God–Hick, pp 56

प्रथम —"Kant is mistaken, Even if we grant that the summumbounum oughat be realized, that it can be realized, and that man cannot ensure its realization, it still doesa not follow that only God can realize it Why cannot the summumbonum be realized by something more powerful than man and lesas powerful than God? Why cannot a top thinking angel do this Job? why not pantheon of anglesa? Why not a pantheon of very clever and Kantian-minded anglesa "[1]

सी०डी० ब्रॉड ने काट के तर्क की उसी प्रकार आलोचना की है जिस प्रकार काट ने परम्परागत आस्तिक प्रमाणो की आलोचना किया है कि यदि ईश्वर का अस्तित्व है तो उसे प्रकृति को यह उपदेश देना चाहिए कि सद्‌गुण उचित अनुपात मे सुखद (happinesas) भी हो। जब हम कहते है कि अ का अस्तित्व होना चाहिए तो इसका आशय यह नही है कि 'अ का वास्तविक रूप से अस्तित्व है'। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम स्वय सी0डी0ब्रॉड के शब्दो मे देख सकते है —

"There are two different sensesa of 'oughat', and one of thesae involvesa factual possibility whilst the other involvesa only logical possibility If I say You oughat to do so and so", I do imply that you could do so and so in some sense which is not merely that there is no logical contradiction in the motion of your doing it But, if I say, "So and so, oughat to

1 पूर्वोक्त पृष्ठ ९३

exist", I imply only that it would involve no logical contradiction and that any being who could bring it about oughat to try to do so But it doesa not imply that there actually is any such being Thus Kant is entitled only to the hypothetical proposition "If a perfect God existed he would order the course of nature so that virtue would receive its appropriate regard in happinesas" He is not entitled to the categorical conclusion that such a being exists" [1]

यह भी कहा जाता है कि काट का तर्क इस सम्भावना की उपेक्षा करता है कि सद्‌गुण और सुख के बीच कोई प्राकृतिक सम्बन्ध हो सकता है, जो प्रथमदृष्टया स्पष्ट नही है। हम यह भी कल्पना कर सकते है कि एक अवैयक्तिक नैतिक व्यवस्था (कर्म व पुनर्जन्म की तरह) सद्‌गुण एव सुख का वाछित समन्वय लम्बे समय मे करती है।

यह तर्क उस समय आधार विहीन हो जाता है जब हम यह कहते है कि हम नैतिक दायित्वो से बधे हुए नही है कि सर्वोच्च शुभ का अनुभव करे, हम बलपूर्वक केवल इन अनुभवरहित लक्ष्यो के अनुभव के लिए बाध्य है। हम काट के तर्क की पुनरावृत्ति इस प्रकार कर सकते है। विश्व का अवलोकन करने के बाद हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है सर्वोच्च शुभ और हमारी नैतिक पूर्णता अप्राप्य है, इसलिए, इनकी प्राप्ति का दायित्व हमारे ऊपर नही है अपितु कम से कम इतना दायित्व है कि उनकी प्राप्ति हेतु प्रयास करे। यह कर्त्तव्य है।

1 सी०डी० ब्राड फाइव टाइटस ऑफ एथिकल थिअरी पृष्ठ 141–142

नैतिक तर्क के कुछ और प्रकार है जो ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए ईश्वरवाद के समर्थको द्वारा प्रस्तुत किये गये है। नैतिक तर्क के समर्थको का कहना है कि यदि कोई नैतिक नियमो को अदेश (commands) के रूप मे समझता है तो वह एक आदेशकर्त्ता (commandei) के अस्तित्व को स्वीकार करने के पक्ष मे तर्क दे सकता है। आदेशकर्त्ता कोई वैयक्तिक मानवीय नैतिक कर्त्ता नही हो सकता। हम निरपेक्षतया नैतिक दायित्वो का धारण तभी कर सकते हे जब केवल यदि एक ईश्वर का अरितत्व हो जो उन्है आदेशित करे। चूँकि हम निरपेक्ष नैतिक दायित्वो को धारण करते है इससे ईश्वर का अस्तित्व निगमित होता है।

इस सम्बन्ध मे एच०पी० ओवेन (II P Owen) का कथन है कि —

" It is impossible to think of a command without also thinking of commander------A clear choice facesa us Either we take moral claims to be selfexplanatory modesa of impeisonal existence or we explain them in terms of a peisonal God "[1]

कुछ दार्शनिको का कहना है कि उत्तरदायित्व की भावना और अपराधबोध (guilt), ईश्वर की वैयक्तिक इच्छा पर आधारित है। यही कारण है कि जिससे लोग नैतिकदायित्व महसूस करते है जब वे अपना नैतिक कर्म करते है। और जिससे लोग अपराध

---

1 एच०पी० ओवे। दी मोरल आरगुमेन्ट फॉर क्रिश्चिआन थीज्म पृ०-49 क्वोटेड इन ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द फिलॉसॉफी ऑफ रिलिजन बाइ ब्रेन डेविस -पृष्ठ-93

बोध महसूरा करते है जब वे नैतिक कर्म करने मे असफल रहते है। ईश्वर के बिना ये बाते सम्भव नही है। इस विचार को जॉन हैनरी न्यूमैन ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

" If, as is the case, we feel resaponsibility, are ashaned, are frightened, at transgresasing the Voice of conscience This implicsa that there is one to whom we are resaponsible, before, whom we are ashined, whose claim upon us we fear "[1]

लेकिन हम प्रश्न कर सकते है कि क्या आदेश (Command) का विचार नीतिशास्त्र का आधार है? यहॉ पर आदेश का आशय सैनिक आदेश से नही है। नैतिक आदेश हमारे दैनिक जीवन के सामान्य आदेश से भिन्न होते है। हम अपने दैनिक गतिविधियो के आदेश के द्वारा एक आदेश कर्त्ता का निष्कर्ष निकाल सकते है। जिस प्रकार सैनिक आदेश मे हम आदेश (Command) के साथ–साथ आदेश देने वाले (Commander) को भी प्राप्त करते है लेकिन जब हम नैतिक आदेश की बात करते है तो यहॉ तथ्य भिन्न होता है। नैतिक आदेश कुछ मूल्यो से बधे होते है। बिना किसी आदेशकर्त्ता (commander) के हम कुछ नैतिक आदेशो को प्राप्त कर सकते है। नैतिक आदेश और समान्य आदेश अपने स्वरूप मे परस्मपर बहुत भिन्न है, इसलिए हम उन्है एक साथ नही रख सकते।

---

1 जे०एन० न्यूमैन एक ग्रामर ऑफ ऐसेन्ट (A Crammar of Assent) ed सी०एफ० हैरोल्ड पृ0–83 op ciet , P 93

नैतिक तर्क के एक दूसरे रूप मे, समर्थक दावा करते है कि यदि हम नैतिक अधिकार को पहचानते है तो निश्चित रूप

से हमे ईश्वर के अस्तित्व को पहचानना चाहिए जो अकेले उस अधिकार को प्रदान करने वाला है। हम निर्णय करते है कि नैतिक नियम अपनी अधिकारिता को धारण करता है चाहै विशेष मानवीय इच्छाए किसी भी समय वास्तविक रूप से इसके नियमो एव सिद्धान्तो को स्वीकार करे, अथवा नही, इसलिए इसके अधिकार का माध्यम निश्चित रूप से पूर्णतया उन मानवीय इच्छाओ से बाहर होना चाहिए। केवल ईश्वर नैतिक अधिकार को देने वाला है।

नैतिक नियमो के अधिकार या अधिकारिता सम्बन्धी तर्क की भी समान आलोचना की जा सकती है जिसमे अधिकार के एक दैवी माध्यम की आवश्यकता पडती है। मुख्य आपत्ति इस प्रकार है कि मूलभूत नैतिक निर्णय का स्वरूप यह है कि उसमे किसी अधिकार की बात नही होनी चाहिए लेकिन एक कर्त्ता जो इसका निर्माता है, होना चाहिए।

निश्चित रूप से, यह ऐसा अवसर होगा जब मे विश्वास कर सकता हूँ कि दूसरे व्यक्ति के पास ऐसी स्थिति जिसमे हमे कार्य करना है की आन्तरिक दृष्टि का एक श्रेष्ठ पैमाना है, फिर मे अपने स्वय के निर्णय को ठीक ढग से स्वीकार कर सकता हूँ। अपने अस्थायी अधिकार' मे विश्वास करने के आधार को रखने मे हमे कोई नैतिक दोष नही दिखता। मुझे नैतिक दायित्व से युक्त होकर उनका निर्णय करना करना चाहिए। लेकिन यह

स्वय एक नैतिक निर्णय है— पहला यह कि मे किसी के अधिकार का निर्माण कर सकता हूँ और दूसरा यह कि अब व्यक्ति अपने स्वय के अधिकार द्वारा दायित्व का निर्णय ले। और इसी तरह आगे भी।

अधिकार (authority) के लिए एक कानूनी प्रार्थना, द्वारा पूर्वकल्पना की जा सकती है कि स्वायत्त नैतिक निर्णय भी बनाये गये है। हमारा तर्क यह धारण करता है कि हमे अपने सभी नैतिक निर्णयो के अधिकार देने वाले के रूप मे ईश्वर की पूर्वमान्यता स्वीकार करनी चाहिए अन्यथा वे किसी अधिकार का वहन (धारण) नही कर पाएगे। लेकिन इसके विपरीत, हम पाते है कि ईश्वर अधिकार का पक्ष केवल तभी अदा कर सकता है यदि हम किसी वाह्य अधिकार की कामना किये बिना निश्चित नैतिक निर्णयो की स्थापना करने मे समर्थ हो।

नैतिक तर्क के समर्थको का कहना है कि नैतिक कानून (moral law) का विचार स्वय ईश्वर के बिना अपूर्ण है, — कानून' के लिए 'कानून देने वाले' अथवा नियामक (law-giver), एक दैवी कानूननिर्माता का होना आवश्यक है। हम बहुत से 'नैतिक कानूनो' को जानते है, इसलिए ईश्वरवाद की कल्पना की जा सकती है।

इस परिच्छेद से यह स्पष्ट होता है कि "नैतिक कानून" का विचार अपूर्ण है जब तक कि कानून देने वाले ईश्वर की पूर्वमान्यता न हो। लेकिन सामान्य 'कानून' 'नैतिक कानून' (moral law) से बहुत भिन्न है। यह कहना पूर्णतया तार्किक है

कि कुछ लाग या लोगो का समूह समुदाय के सकारात्मक कानूनो, नियमो का पालन करते है लेकिन यह कहना वास्तव मे तार्किक नही है कि कोई मनुष्य या दैवी सत्ता स्वय नैतिक कानूनो को जन्म देती है। यह हमेशा कानूनी रूप से दूसरे कानूनो, नियमो अथवा विधानो के समान होगा जो नैतिक कानूनो को पुष्ट करेगा या उनका विरोध करेगा, लेकिन नैतिक कानून, स्वय कोई ऐसी चीज नही है जिसके होने की आवश्यकता हो अथवा जो किसी के द्वारा तार्किक रूप से धारण की जा सके।

किसी अस्तित्ववान आदेश या विधिसग्रह (code) की सतुष्टि के लिए यह उचित ढग से पूछा जा सकता है–"क्या यह वास्तव मे नैतिक बाध्यता (Morally bındıng) है?

स्पष्टतया एक नियम अथवा कानून का नैतिक अधिकार उसे प्रारम्भ करने वाले के अधिकार मे निहित नही होता।

काट के नैतिक आदर्शों की विवेचना के बाद हम नैतिक आदर्शों की वस्तुनिष्ठता (objectıivaly) के बिन्दु पर आते है। क्या नैतिक आदर्शों मे कोई वस्तुनिष्ठता है? हैस्टिग्स रैशडेल (Hastıng Rashdell) का उत्तर सकारात्मक है। वे अपनी पुस्तक 'द थियरी ऑफ गुड एण्ड एविल' मे कहते है कि–नैतिकता मनुष्य के पसन्द या नापसन्द पर आधारित नही होती, यह आत्मनिष्ठ नही है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति मे यह भिन्न नही है। वह कहता है–

"That the moral ıdeal ıs what ıt ıs whether we like ıt or not ıs the must esasentıal element ın what the popular

consciousnesas understands by "moral deligation" Moral obligation means moral objectivity That at least seams to be implied on any legitinate use of the term atleast it impliesa the existence of an obsolute, objective moral ideal "[1]

लेकिन प्रश्न उठता है कि हम किस आधार पर कह सकते है कि नैतिक आदर्श आत्मनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ है? रैशडेल यहा ईश्वर की शरण लेते है। वह कहते है कि यहा निरपेक्ष नैतिकता है, नैतिक निर्णयो मे निरपेक्ष सत्य और निरपेक्ष असत्य विद्यमान है और नैतिक आदर्श वास्तव मे अस्तित्ववान है। लेकिन यहा एक प्रश्न उठता है। ऐसा आदर्श कहा अस्तित्ववान होता है। निश्चित रूप से यह *मानव* मष्तिक) (human mind) अथवा चेतना मे अस्तित्वान नही होता क्योकि नैतिक आदर्श निरपेक्ष होते है। चूकि यह निरपेक्ष है इसलिए इसे *पूर्ण निरपेक्ष मन* मे अस्तित्वान होना चाहिए। और वह पूर्ण *मनस* (mind) ईश्वर है। चूकि ये नैतिक आदर्श ईश्वर के मनस् मे अस्तित्वान है इसलिए वे वस्तुनिष्ठ है आत्मनिष्ठ नही।

रैशडेल इस तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत करते है–

" We say that he moral law has a real existence, that there is such a thing as an absolute morality, that there is something absolutely true or false in ethical judgments, whether we or any number of human beingSa at any given time actually think or not we must therefore face the

---

1 द थिआरी ऑफ॰ गुड एण्ड एबिल (ऑक्सफोर्ड क्लरण्डन (clarendon) प्रेस 1907) II, पृष्ठ–212–213

quesation where such an ideal exists, and what manner of existence we are to attribute to it Certainly is to be found, wholly and compeletely in no individual human consciousnesas only if we believe in the existence of a mind for which the true moral ideal is already in some sense real, a mind which is the source of whatever is true in our own moral judgement, can we rationally think of the moral ideal as no lesas real than the world itself Only so can we believe in an absolute standard of right and wrong, which is as independent of this or that man's actual ideas and actual desairesa as the facts of material nature The belief in God is the logical presuposition of an objective, or absolute morality A moral ideal can, exist nowhere and no how but in a mind, an absolute moral ideal can exist only in a, from which all reality is derived (Rashdall adds in a footnote, or at least a mind by which all Reality is controlled) our moral ideal can only claim objective validity in so for as it can rationally be regarded as the revelation of a moral ideal eternally existing in the mind of God"[1]

लेकिन नैतिक आदर्शों की इस वस्तुष्ठिता को *बरट्रेण्ड रसेल* द्वारा नैतिक आदर्शों की प्राकृतिक व्याख्या द्वारा चुनौती प्रदान की गई। अब हम रसेल द्वारा दी गई नैतिक आदर्शो की प्रकृतिवादी व्याख्या पर विचार करते है। यदि हम नेतिक आदर्शों की वस्तुनिष्ठता को स्वीकार भी कर ले तो भी यह नही प्रमाणित होता कि यह एक पूर्ण एव निरपेक्ष ईश्वरीय मनस् मे अस्तित्ववान है यह एक गम्भीर प्रश्न है जिसे हल किया जाना चाहिए।

---

[1] The theory of God and Evil' (Oxford, clearendon press 1907) II pp 211-212

बर्ट्रेन्ड ररोल प्रकृतवादी नैतिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते है। वे कहते है, मनुष्य एक लालची जानवर है,और *मानवप्राणी* (human being)   समाजो मे व्यवहार के नियमो, जो उनके हितो को जोडते है को माने बिना सफलता पूर्वक एक साथ नही रह सकता। नैतिक आदर्शों का यह नियम और दायित्व धीरे–धीरे सामूहिक अस्तित्व के अनुभव द्वारा विकसित हुआ है और वे सामाजिक दशाओ द्वारा *आन्तरिकतापूर्ण* (internalised) है। यहॉ हम उन कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओ पर चर्चा करना चाहेगे जिसे *बर्ट्रेण्ड रसेल* ने अपनी पुस्तक *'ह्यूमन सोसाइटी इन एथिक्स एण्ड पालिटिक्स* मे व्यक्त किया है –

1 अच्छे और बुरे का विचार मनुष्य की इच्छाओ के कारण होता है। वह उस वस्तु को पसन्द करता है जो उसकी इच्छाओ को पूर्ण करते है और उस वस्तु से घृणा करता है, जो उसकी इच्छाओ को पूर्ण नही करती। यह पसन्द और घृणा हमारी इच्छा (desairesa) पर निर्भर करती है।हम सुख (अच्छा) की कामना करते है, क्योकि सुख हमारी इच्छाओ को सन्तुष्ट करता है, इसके विपरीत हम कष्ट (बुरा) से घृणा करते है, क्योकि घृणा इच्छाओ की सन्तुष्टि नही है। यह इच्छाओ को आघात पहुँचाता है। शुभ (Good) इच्छाओ की सन्तुष्टि है। *रसेल कहता है–*

"I suggesat that an occurrence is "Good" when it satisfiesa desaire, or more precisely, that we may define, "Good" as "satisfaction of desaire" One occurrence is

"better" than another it, it satisfiesa more desairesa or more intense desaire "[1]

2 *उचित* एव *अनुचित* का विचार अच्छे और बुरे पर आधारित है। हम कभी किसी बुरी वस्तु को उचित नही कहते अथवा किसी शुभ वस्तु को बुरा नही कहते। हम यह कभी नही कहते कि दूसरो को धोखा देना उचित है अथवा दूसरो की सहायता करना बुरा है। *बरट्रेण्ड रसेल का विचार* है—

"Right" conduct is that which, on the evidence, is likely to produce the greatesat balance of good over evil or the smallesat balance of evil over good --(The) sum total of moral obligation is contained in the precept that, a man oughat to do right in the above sense" [2]

3 यह कहने के बाद कि शुभ इच्छाओ की सन्तुष्टि है, रसेल कहते है कि सामान्य शुभ (general good) मानव प्राणियो (human beingSa) की सम्पूर्ण इच्छाओ की सन्तुष्टि है। आगे वह कहते है कि यहॉ कुछ 'शुभ' राष्ट्र के लिए है। कुछ शुभ समाज के लिए है। राष्ट्र के लिए शुभ सम्पूर्ण इच्छाओ की सन्तुष्टि है इसी प्रकार समाज के लिए शुभ, समाज की सम्पूर्ण इच्छाओ की सन्तुष्टि है। उदाहरण के लिए– एक राष्ट्र मे 'हमे धर्म की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, एक शुभ है। इसका तात्पर्य यह है कि यह शुभ' उस राष्ट्र

---

1 बर्ट्रेन्ड रसेल ह्यूमन सोसाइटी इन एथिक्स एण्ड पालिटिक्स पृष्ठ–55
2 बर्ट्रेन्ड रसेल 'ह्यूमन सोसाइटी इन एथिक्स एण्ड पालिटिक्स" पृष्ठ–50

की राम्पूर्ण इच्छाओ की सन्तुष्टि है। इसी प्रकार—एक समाज मे—हमे बालविवाह को स्वीकार नही करना चाहिए''— एक शुभ है, जिसका आशय यह है कि यह शुभ उस समाज की सम्पूर्ण इच्छाओ की सन्तुष्टि है। यथा—"The general good wil be the total stisfacton of desaire, no matter by whom enjoyed The good of a section and the good of an individual will be the satisfaction of the desairesa of that individual"[1]

4 यह आवश्यक है कि सभी इच्छाएँ स्वकेन्द्रित हो। कुछ इच्छाए ऐसी होती है, जो स्वकेन्द्रित नही होती। उदाहरण के लिए, जब एक मॉ अपने बच्चे के सुख लिए स्वय का बलिदान करती है तो उसकी इच्छा स्वकेन्द्रित नही है। जब एक राष्ट्रभक्त, राष्ट्र के लिए अपना बलिदान करता है तो उसकी इच्छा भी स्वकेन्द्रित नही है। यथा— "Most people desaire the happinesas of their children, many that of their friends, some that of their country and a few that of all mankind "[2]

5 एक प्रश्न उठता है कि *नैतिकता* क्यो आवश्यक है? रसेल का कहना है कि नैतिकता आवश्यक है क्योकि हम स्वय अपने आप अपने समुदाय अथवा पूरे राष्ट्र के शुभ की रक्षा नही कर सकते। वास्तव मे नीतिशास्त्र (Ethics) है—

---

1 बर्ट्रेण्ड रसेल । यूम। सोसाइटी इन एथिक्स एण्ड पालिटिक्स पृष्ठ—60

2 बर्ट्रेण्ड रसेल ह्यूम। सोसाइटी इन एथिक्स एण्ड पालिटिक्स पृष्ठ—56

" Part of an attempt to make man more gregarious than nature made him"[1]

इस प्रकार–

"One may lay it down broadly that the whole subject of ethics arisesa from the presasure of the community on the individual Man is very imperfectly gregarious, and doesa not always instinctively feel the desaiiesa which are useful to his herd The herd being anxious that the individual should act in its interesats, has invented various devicesa for causing the individual" interesat to be in harmony with that of the herd One of thesac is government, one is law and custom and one is morality [2]

6 नैतिक निर्णय के निकषो (Criteria) का ज्ञान भी महत्वपूर्ण है। जो वह पैमाना (Standard) है जिससे उचित और अनुचित मे, अच्छा और बुरा मे, अन्तर किया जाता है, और जो किसी भी प्रकार से ईश्वर के वास्तविक या पूर्वमान्य अस्तित्व पर निर्भर नही करता। ये निकष (Criteria) प्रत्येक व्यक्ति द्वारा जाने जाते है। ये सामान्यत व्यवहार के सिद्धान्त है जिनकी सभ्य जीवन की सम्भावना के लिए आवश्यकता होती है। उचित अनुचित के निर्णय मे ईश्वर की कोई आवश्यकता नही है। वह केवल अच्छे कार्यों को करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। नैतिकता, फिर भी

---

1 बर्ट्रेन्ड रसेल – हयूमन सोसाइटी इन एथिक्स एण पालिटिकस पृष्ठ–129
2 बर्ट्रेन्ड रसेल – हयूमन सोसाइटी इन एथिक्स एण पालिटिकस पृष्ठ 125

परिभाषित की जा सकती है—यह कुछ तथ्यो से अत्यन्त गम्भीर रूप से सहसम्बन्धित रूप मे प्रकट होती है—जैसे सामाजिक स्थिति आय, गृह एव शिक्षा के स्तर का धार्मिक सयुक्तता के साथ, अथवा धार्मिक अपराधो (Convention) की अधिकता एव गम्भीरता के साथ।

नैतिक निर्णयो का कोई अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय नही है। यदि लोग किसी तथ्य के महत्व के बारे मे झगडते नही, वे अपनी भिन्नता को एक लम्बाई नापने की पटरी (Scale) पर तथ्यो को रखकर निर्णय करते है। यदि पटरी (Scale) की शुद्धता पर प्रश्न चिन्ह लगता है और विषय महत्वपूर्ण है तो पटरी को *कडाई के साथ* लेते है और परीक्षण करते है, और इस प्रकार से विवाद का अन्त हो जाएगा। लेकिन यदि उनका विवाद तलाक तक की नैतिकता के बारे मे अथवा जनसख्या नियन्त्रण, या स्वतन्त्रता का बाधक हाइड्रोजन बम के प्रयोग के बारे मे हो तो असहमति को दूर करने का क्या उपाय है।? इस प्रकार के विवादो को दूर करने के लिए अनेक प्रकार के विचार है, परन्तु उनमे सामान्य सहमति नही हो सकती।

उपरोक्त तथ्यो के कारण कुछ विचारक यह ऐलान करने को विवश है कि नैतिक निर्णय अपने मे वास्तविक रूप से न सत्य होते है न असत्य, क्योकि वे केवल भावनाओ की अभिव्यक्ति होते है। यदि हम कहते है कि पुनर्विवाह गलत है, और आप कहते है कि सही है तो हम—यदि इसको गलत तरीका मानेगे तो इस प्रकार व्यक्त करेगे—"पुनर्निवाह कितना भयानक है" और यदि सही मानेगे तो कहैगे कि—पुनर्विवाह बहुत

अच्छा है। इसका तात्पर्य यह है कि एक उससे घृणा कर रहा है जबकि दूसरा उसे पसन्द कर रहा है जो विषय के बाहर है। एक भावना उतनी ही अच्छी है जितनी कि दूसरी। यदि कुछ तीसरे व्यक्ति यह कहते है कि एक ठीक है और दूसरा गलत है तो इससे कोई निष्कर्ष नही निकलता अपितु भावनाओ की एक तीसरी अभिव्यक्ति है। सचमुच हम प्रथम बिन्दु पर वास्तविक रूप से असहमत नही है। यहॉ पर हमे असहमत होने का कोई कारण नही है, यहॉ कोई वस्तुनिष्ठ सन्दर्भ (विषय) नही है।

यह विचार कि नैतिक निर्णयो मे कोई वस्तुनिष्ठ वैधता नही होती अपितु केवल भावनाओ की अभिव्यक्ति है। यह या तो व्यक्तिगत होती है अथवा सास्कृतिक मान्यता होती है, जिसे नैतिक सापेक्षता (ethical relativism) कहा जाता है।

यदि ईश्वर अपनी बुद्धि से शुभ की स्थापना करता है तो यहॉ कोई कारण नही है कि मनुष्य वही कार्य करने के लिए अपनी तर्कशक्ति का प्रयोग करने मे समर्थ न हो।

यह नही कहा जा सकता कि धर्ममीमाशा नैतिकता के लिए अपने आप (धर्ममीमाशा) असगत है। उचित क्या है इसका निर्णय करने मे धर्ममीमाश्शा का अत्यन्त व्यावहरिक महत्त्व है। एक अनुमान किया जा सकता है। कल्पना करता हूॅ कि मे एक कमजोर गणितज्ञ हूॅ, लेकिन मेरे अध्यापक कभी गलती नही करते। यदि मे एक जोड लगाता हूॅ और उसके उत्तर की सत्यता मे सशय है तो मेरे लिए तार्किक रूप से उचित होगा कि सही उत्तर के लिए अध्यापक से पूछे। हमारे पास यह सोचने के

लिए अच्छा तर्क होगा कि अपने आकलन मे विश्वास करने के लिए अध्यापक का उत्तर ठीक है। लेकिन हमे सत्य कथन मे सशय नही करना चाहिए कि अध्यापक का उत्तर हमेशा ठीक होता है।' एक बेतुके (abiuid) रूप मे "अध्यापक को उस रूप मे कहना उत्तर को सही बताना है" उत्तर को सही बताना जन्मजात रूप से स्वय उसकी अवधारणा मे निहित होता है। अध्यापक के प्रति मेरी श्रद्धा उसकी श्रेष्ठ बौद्धिक शक्ति की इन अवधारणाओ के द्वारा प्रमाणित है।

लेकिन, वास्तव मे यह अध्यापक केवल मानवप्राणी है न कि ईश्वर।

नैतिक तर्क का मनौवैज्ञानिक महत्त्व कम नही है। नैतिक मार्ग का अनुसरण करते हुए एक व्यक्ति कार्य करने मे अपने को अकेला व डरा हुआ महसूस कर सकता है। यह एक भौतिक सहनशक्ति और साहस की बात है। इन विषय परिस्थितियो का सामना करते हुए नैतिक व्यक्ति दुखी होगा, और यह सोचने मे सक्षम होगा कि—कोई बात नही मे कितना अकेला और शक्ति विहीन हूँ, मुझे केवल नैतिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। मुझे ठीक ठग से कार्य करना चाहिए, यह विचार धारण किये हुए कि मे ईश्वर का अनुभव कर सकता हूँ जिससे प्रत्येक वस्तु का अन्त ठीक हो। इस प्रकार नैतिक तर्क हमारी असुविधाओ पर विजय प्राप्त कराने मे सहायता करते है। नैतिक तर्क मनोवैज्ञानिक मूल्य रखते है।

नैतिक तर्क का भिन्न रूप और है जिसे हैनरी सिजविक ने स्वीकार किया है, परन्तु उन्होने लिखित समर्थन नही किया है। यह *व्यावहारिक बुद्धि के दोहरेपन* (The duality of practical reason) से प्रारम्भ होता है दोनो तथ्य *बौद्धिक अहवाद और भले बुरे के आन्तरिकज्ञान का आदेश* बिना योग्यता के व्यावहारिक से तार्किक है। यदि यहा ईश्वर या ईश्वर की तरह अन्य कोई सत्ता न हो तो उपरोक्त तथ्यो मे अनुरूपता का अभाव होगा। इसका कारण यह है कि—

1 कार्य करने की मेरी जो महत्वपूर्ण बुद्धि है वह भविष्य मे हमेशा मेरी प्ररान्नता को बनाये रखेगी।

2 हमारे पास किसी कार्य को करने की जो महत्वपूर्ण बुद्धि है, वह हमेशा नैतिकता के लिए आवश्यक है।

3 यदि विश्व का कोई *नैतिक शासन* न हो जो मेरी प्रसन्नता को बनाये रखे तो यह वह नही है जौ नैतिकता के लिए आवश्यक है।

इन आधारवाक्यो मे प्रथम दो आधारवाक्यो द्वारायह स्पष्ट है कि *बुद्धि* (Prudence) और नैतिकता हमेशा साथ—साथ रहते है। क्योकि यदि ऐसा नही होगा तो इन दोनो का भिन्न चुनाव जिसे मै बौद्धिक रूप से प्राप्त करता हूँ, रात्य नही होगा। अर्थात् ये दोनो आधारवाक्य एक साथ सत्य नही हो सकते लेकिन पुन बौद्धिकता (Prudence) और नैतिकता हमेशा अनुरूप तभी हो सकेगे जबकि यदि इस विश्व का कोई *नैतिक शासक* (Moral

government) चाहे ईश्वर या ईश्वर के रामान कोई और हो। यह युक्ति स्पष्ट रूप से वैध है यद्यपि इसका निष्कर्ष परम्परागत ईश्वर वादी मान्यता के साथ ठीक नही बैठता क्योकि नैतिक शासन के लिए एक वैयक्तिक ईश्वर की कोई आवश्यकता नही होती, परन्तु क्या ये आधारवाक्य सत्य है सिजविक प्रथम के लिए स्वीकार करता है कि यह आचरण मे बौद्धिकता के अन्तर्ज्ञान से युक्त है। दूसरे आधारवाक्य को सिजविक द्वारा स्वीकार करने का कारण यह है कि उपयोगितावादी अर्थ मे सामाजिक कर्त्यव्य को स्वीकार करता है। साथ ही, यदि विश्व मे कोई *नैतिक शासन* (moral government) न हो तो वर्तमान जीवन जिसमे हम जीते है, और इस जीवन मे सहजतापूर्वक स्थापित आनुभविक सत्य उपयोगितावादी नैतिकता की माग, सामान्य सुख (general happinesas) की वृद्धि आदि मे हमेशा सामन्जस्य का आभाव रहैगा। इरा प्रकार इन आधारवाक्यो से तीसरा आधारवाक्य निगमित होता है।

यद्यपि इन तर्कों द्वारा सिजविक तीनो आधारवाक्यो को स्वीकार करते है, परन्तु वे निष्कर्ष से सहमत नही है। वह (सिजविक) मानते है कि एक मूलभूत और अनिश्चित *अव्यवस्था* (Chaos) हमारी व्यावहारिक बुद्धि मे है और मानव बुद्धि पूर्णत सन्तोषजनक आदर्श की रचना नही कर सकती–'तथ्य केवल यह कि मे एक निश्चित प्रस्ताव (योजना) के विना बौद्धिक रूप से कार्य नही कर सकता–और यह मेरे लिए उतना स्पष्ट नही हो सकता जितना कि कुछ अन्य लोगो को होता है, इसे सत्य होने के लिए एक पर्याप्त आधार है। ठीक इसी तरह सिजविक काट के विचारों का खडन करता है जिसमे अपने कर्तव्य को करने के

लिए नैतिक आवश्यकता अपेक्षित होती है जिसमे ईश्वर को स्वीकार किया गया है। यद्यपि क्या ऐसी परम्परा वास्तव मे अस्तित्ववान है। क्या सिजविक इस निष्कर्ष की स्वीकृति को खडित करने मे हठ का सहारा लेते है। मे सोचता हूँ ऐसा नही है। अधिक सत्य यह है कि ईश्वर के अस्तित्व के लिए दिये गये सभी महत्वपूर्ण नैतिक प्रमाणो की मूलभूत कमजोरियो पर वह ध्यान आकर्षित कराते है। विश्वास जिसे "अन्तर्ज्ञान" भी कहा जाता है, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को कार्य करना चाहिए एक तथ्यात्मक विषय की स्थापना के लिए अच्छा तर्क नही हो सकता, न ही वह विषय की निश्चितता का आधार हो सकता है अथवा व्यावहारिक उददेश्यो के विश्वास का निश्चय कर सकता है। व्यावहारिक इच्छाए तथ्यात्मक विश्वासो पर आधारित होनी चाहिए, यद्यपि विश्वास अकेले सचमुच इच्छाओ का निश्चय नही कर सकता।

सोर्ले

विलियम रिची सोर्ले विश्व मे नीतिमूलक उददेश्यपूर्णता के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना चाहते है। उनका प्रश्न विश्व की उददेश्यपूर्णता या उददेश्य हीनता के निश्चय से सम्बन्धित है। यदि विश्व उददेश्यविहीन है तो किसी प्रकार का व्यवस्थित चितन, जिसे दर्शन की सज्ञा दी जाती है, सम्भव नही है। अत विश्व को उददेश्यपूर्ण समझना चाहिए। लेकिन स्पष्टत विश्व मे एक ओर प्रकृति है, और दूसरी ओर नैतिक व्यवस्था है। ये दोनो कितने ही परस्पर विरोधी क्यो न दिखे, लेकिन ये दोनो प्रकार की व्यवस्थाए परम् सत्ता मे स्थित मालूम देती है। अब

यदि सम्पूर्ण विश्व वास्तव मे सामन्जस्यपूर्ण है तो हमे मानना पडेगा कि यह सामन्जस्यपूर्णता मानव के नैतिक विकास द्वारा स्पष्ट की जा सकती है।

सर्वप्रथम, हमे यह मानना होगा कि यदि विश्व उद्देश्यपूर्ण हो तो यह उददेश्यपूर्णता, विश्व की कालगति मे प्राप्त होगी। यह ठीक है कि काल के अनत प्रवाह मे कोई ऐसी घटना नही बतायी जा सकती है जिसमे यह उद्देश्यपूर्णता पूरी होती है, परन्तु इन कालगत घटनाओ के ध्यानपूर्ण निरीक्षण से हमे इस उद्देश्यपूर्णता का आभाष होता है।फिर इस उद्देश्यपूर्णता की प्राप्ति मे मानव को ही आवश्यक साधन बनाया जाता है, जिसके द्वारा यह उददेश्यपूर्णता कालगति मे क्रमश प्राप्त होती है। अब यदि मानव को इस उददेश्पूर्णता का साधन माना जाय तो हमे मानना पडेगा कि मानव के लिए उसकी नैतिकता उसके जीवन का चरम लक्ष्य है। अत हमे स्वीकार करना पडेगा कि विश्व की उद्देश्यपूर्णता अन्तिम रूप मे नैतिक शुभ प्राप्ति मे स्पष्ट होती है।

अब यदि विश्व का रचयिता ईश्वर हो जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और शुद्ध रूप से शुभ है तो किस प्रकार से इस विश्व के चरम लक्ष्य शुभप्राप्ति को स्पष्ट किया जाय? यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है कि इस विश्व मे अशुभ वास्तविक रूप मे पाये जाते है। और विशेषकर ये अशुभ अनैतिक कहे जा सकते है। अात सर्वशक्तिमान ईश्वर इस नीतिमूलक विश्व मे अशुभ को क्यो प्रश्रय देता है। सोर्ले के अनुरार नैतिक शुभ केवल स्वतन्त्र इच्छायुक्त जीवो के द्वारा प्राप्त हो सकता है। फिर

इच्छास्वातन्त्रय के रहने पर मानव इसका सदुपयोग भी कर सकता है और दुरूपयोग भी। अत ईश्वर ने मानव को ईच्छा स्वातन्त्रय देकर अपने से अपनी शक्ति को सीमित किया है। सोर्ले के अनुसार ईश्वर भी इच्छा स्वातन्त्रय को कभी पूर्णतया नियत्रित नही कर सकता है। मानव अपने इच्छा स्वातन्त्रय का दुरूपयोग कर नैतिक अशुभ उत्पन्न कर सकता है। अत नैतिक अशुभ ईश्वर के द्वारा उत्पन्न नही होता। ईश्वर अशुभ को चाहता नही है। परन्तु, ईश्वर को उसे अनुमति प्रदान करना पडता है। परन्तु उच्छृखल मानव अपनी अनैतिकता से इस विश्व के नैतिक उददेश्यो को समाप्त नही कर सकता है क्योकि ईश्वर ने मानव को सीमित शक्ति प्रदान की है। यद्यपि ईश्वर ने ईच्छा–स्वातन्त्रय देकर अपने को आत्मसीमित अवश्य कर लिया है तो भी ईश्वर सर्वज्ञ होने के कारण मानव की सभी प्रक्रियाओ को उनके तीनो काल मे जानता है और इस पूर्वज्ञान से वह उच्छृखल मानव की अनैतिक कार्यवाही को ध्यान मे रखकर उसका प्रतिकार करता रहता है।

अत इस विश्व का रचयिता नैतिक सत्ता है जिसने इस विश्व की ऐसी सृष्टि की है कि इसमे अन्त मे नैतिक शुभ की प्राप्ति हो।

आलोचना

सन् 1918 मे प्रस्तुत सोर्ले का प्रमाण उस समय विशेष माना जाता था और उनकी पुरतक *'मोरल वैन्यूज ऐण्ड दी आइडियॉ 'ऑफ गॉड'* के कई रास्करण भी निकले परन्तु इस

प्रमाण को समकालीन दर्शन मे विशेष मान्यता नही दी जायेगी। वास्तव मे देखा जाय तो ईश्वर के अस्तित्व के लिए सोर्ले ने कोई नया प्रमाण नही दिया है। उन्होने स्वीकार कर लिया है कि ईश्वर है और यह ईश्वर नैतिक रूप से पूर्ण है। अब यदि इस नैतिक एकेश्वरवाद को मान लिया जाय तो किस प्रकार से नैतिक अशुभ की व्याख्या की जा सकती है। अत सोर्ले का दर्शन नैतिक ईश्वरवाद का स्पष्टीकरण है, न कि नैतिक ईश्वरवाद का प्रमाणीकरण हैं। तो भी मानना पडेगा कि अशुभकी व्याख्या करने मे सोर्ले का मत उल्लेखनीय है। अब हम निम्न कारणो से सोर्ले के नीतिपरक प्रमाण को युक्ति सगत नही मान सकते।

सर्वप्रथम, सोर्ले का प्रमाण तत्वमीमासक है और इसलिए इसे सज्ञानात्मक नही माना जायेगा। इस विश्व की उददेश्यपूर्णता या उद्देश्यविहीनता का प्रश्न प्रसगहीन है। हम समझते है कि मानव के मानक द्वारा इस विश्व का मूल्याकन किया जा सकता है। चूकि मानव व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होते है। इसलिए हम समझते है कि विश्व को किसी अतिमानव ने ही उद्देश्यपूर्णता के लिए बनाया होगा। इस प्रकार के विचार मे मानवत्वावरोपी दोष आ जाता है ।

फिर ईश्वर ज्ञान की व्याख्या ऐसी की गई है जो मानव ज्ञान से सर्वथा भिन्न और विलक्षण है। ईश्वर ज्ञान को कालातीत कहा गया है, क्योकि इसमे तीनो काल एक साथ पाये जाते है।

अत सोर्ले का प्रमाण भी वास्तव मे सज्ञानात्मक न होने के कारण प्रमाण नहीं कहा जा सकता। यह बात सोर्ले ही नही किसी के भी नीति परक प्रमाण मे लागू होती है। क्योकि नैतिक शुभ का सम्बन्ध वास्तविकता से नही, वरन् मानव दृष्टि तथा अभिवृत्ति से रहता है और अभिवृत्ति को असज्ञानात्मक कहा जाता है।

ए० ई० टेलर

ए०ई० टेलर ने अपनी पुस्तक द फेथ ऑफ ए मॉरेलिस्ट' मे ईश्वर के अस्तित्व के लिए नैतिक तर्क प्रस्तुत किया है। टेलर ने काट के विस्तृत तर्कों के कुछ भागो की आलोचना करके अपने तर्कों की पुष्टि की है। टेलर ने अपने नैतिक तर्क को एकमात्र और पूर्णपर्याप्त आस्तिक प्रमाण नही माना है लेकिन इनका विश्वास है कि बिना इसके ईश्वरवाद कमजोर और सदेहास्पद होगा। टेलर ने नैतिक जीवन को केवल प्रमुख सिद्धान्तो और नियमो के निर्णायक के रूप मे ही नही माना है बल्कि नैतिककर्ता को आत्मविकास के निश्चित उपायो के साथ निर्देशित करने वाले के रूप मे भी स्वीकार किया है। टेलर के अनुसार लक्ष्य जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं स्वय परिवर्तित होता रहता है। आगे हम इसका पीछा करते है। सासारिक शब्दो मे इस ससार मे हम मानवशुभ की कल्पना करने मे पूर्ण समर्थ नही है। उद्‌देश्यपूर्ण, मूल्यात्मक कार्यों के द्वारा हमारी वर्तमान चेतना का विस्तार होता है। इस विकास मे सीमित विषय को नित्यता के प्रकाश मे स्पष्ट किया गया। टेलर का दावा है कि—

" from the existence of a function to the reality of on environment

in which the function can find adequate exercise" यहाँ प्रो० टेलर यह प्रश्न उठाते है कि क्या नैतिकता का कोई तथ्यपरक, धर्मशास्त्रीय अथवा कोई अन्य आपादन (Implications) होता है? प्रो० टेलर उन विचारको को उत्तर देना चाहते है जिन्होने इस आपत्ति का नामकरण किया है – तथ्य से मूल्य का हठधर्मी वियोजन' ("The alleged rigid disjunction of fact from value") और वे इसका तार्किक खडन करते है। सन्दर्भित सिद्धान्त अत्यन्त अस्पष्ट एव द्वयर्थक प्रतीत होता है और प्रो० टेलर ने इस द्वयर्थकता को दूर करने का प्रयास किया है।

प्रो० टेलर ने अपने तर्क को इस रूप मे प्रस्तुत किया है–'कोई वस्तुस्थिति अत्यन्त शुभ होती यदि इसका अस्तित्व होता', यह कथन इस विश्वास का आधार नही बन सकता कि उस वस्तुनिष्ठता का अस्तित्व है अथवा होगा, इसी प्रकार अमुक तथ्य अत्यन्त अशुभ होगा यदि उसका अस्तित्व हो, के आधार पर यह विश्वास नही किया जा सकता कि उसका अस्तित्व नही है अथवा नही होगा। प्रो० टेलर का शेष अध्याय उन सिद्धान्तो के खडन मे सलग्न दिखाई पडता है जो उपर्युक्त सिद्धान्त से भिन्न तथा उससे तर्कत असम्बद्ध है। इस प्रकार प्रथमत वे विस्तारपूर्वक इस दृष्टिकोण का विरोध करते है कि मूल्य अस्तित्व से वियोज्य है। उनका अभिप्राय यह है कि सामान्य, सख्या, वर्ग, प्रतिज्ञप्ति सदृश अस्तित्व अनिवार्यत मूल्य से सम्बद्ध है। द्वितीयत वे इस दृष्टिकोण का खडन करते है कि मूल्य अस्तित्व से वियोज्य है, क्योकि किसी अस्तित्ववान का मूल्य उसके तथ्यपरक स्वरूप से पृथक् नही हो सकता। यदि किसी ने उपर्युक्त किसी भी अर्थ में मूल्य को अस्तित्व से वियोज्य मानता

है तो निश्चय ही वह असगत सोच रहा है किन्तु क्या किसी ने ऐसा माना है? और यदि किसी ने ऐसा माना है तो भी क्या इस चर्चा का औचित्य उस सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य मे है जिस पर विचार करने का प्रस्ताव प्रो० टेलर ने आरम्भ मे किया था। तृतीयत प्रो० टेलर इस पर विचार करते है कि मूल्य एव तथ्य इस अर्थ मे वियोज्य है कि मूल्य के प्रति हमारी अभिरूचि एव हमारा ज्ञान विशुद्ध ऐकान्तिक मानवीय विषमता है। यही विषमता अन्य सत्ता के स्वरूप पर प्रकाश डालती है। प्रो० टेलर ने मेक्टागार्ट को तथ्य एव मूल्य के वियोजन का प्रमुख पक्षधर मानते है।

उपर्युक्त तीन अर्थो मे मेक्टागार्ट प्रो० टेलर से सहमत हो सकते है। मेक्टागार्ट ने उसे बलपूर्वक स्थापित किया है, जिसे मूलरूप मे प्रो० टेलर प्रस्तुत करते है।

प्रो० टेलर के उपरोक्त विचार पर सी०डी० ब्रॉड की दो टिप्पणियॉ द्रष्टव्य है–

1 प्रो० टेलर के प्रमुख तर्क के लिए यह वस्तुत आवश्यक नही प्रतीत होता है कि वह तथ्य एव मूल्य के वियोजन का खण्डन करे क्योकि उनकी प्रमुख युक्ति काट के विचारो से उत्थापित है, अर्थात् नैतिक प्रतिबद्धता के अस्तित्व से उन परिस्थितियो के अस्तित्व के सम्बन्ध की चर्चा जिनके बिना प्रतिबद्धता की पूर्णता सम्भव नही है। इस प्रकार की युक्तियॉ अन्तत वैध है और इसमे सन्देह नही है कि तथ्य एव मूल्य इस अर्थ मे असम्बद्ध है जिस अर्थ मे मेक्टागार्ट

ने इन्है प्रस्तुत किया था। तथापि यदि चक्रकदोष का निवारण करना है तो ऐसी युक्तियो मे ज्ञान की कुछ शर्तों को पूरा करना आवश्यक है। इस युक्ति मे चक्रकदोष होगा यदि वह व्यक्ति जिसके समक्ष यह युक्ति प्रस्तुत की गई है यह नही जानता अथवा इस प्रकार का बौद्धिक विश्वास नही रखता कि वह प्रश्नगत प्रतिबद्धता से ग्रस्त है। उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि जो परिस्थितियॉ प्रतिबद्धता को पूर्ण करती है, वे वास्तविक है। प्रो० टेलर द्वारा प्रस्तुत युक्ति मे सशय का स्थान बना रहता है, क्योकि नैतिक प्रतिज्ञाप्तियॉ, नैतिक प्रतिबद्धता की माग करती है। अत इस प्रकार की युक्ति का प्रयोग वही सम्भव है जहॉ नैतिक प्रतिबद्धता सम्यक्रूप से स्थापित हो।

द्वितीय विचारणीय बिन्दु यह है कि तथ्य तथा मूल्य के वियोजन से सम्बद्ध मेक्टागार्ट की युक्ति की समीक्षा करते समय प्रो० टेलर ने जो कुछ भी कहा है वह ईश्वरवादी एव अनीश्वरवादी विचारधाराओ के पारस्परिक अन्तर को जाने बिना ठीक से विवेचित नही हो सकता। ईश्वरवादी की दृष्टि मे विश्व मे व्याप्त अशुभ का स्वरूप अनीश्वरवादी की दृष्टि मे अशुभ के स्वरूप से निश्चय ही पृथक होगा। इस दृष्टि रो प्रो० टेलर की विवेचना अपर्याप्त प्रतीत होती है।

अध्याय-चार

धार्मिक अनुभव एवं ईश्वर का अस्तित्व

अध्याय–चार

धार्मिक अनुभव एवं ईश्वर का अस्तित्व

ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए कोई बौद्धिक युक्तियाँ सफल नही हो सकी है। दर्शन जगत् मे ईश्वरवादियो के तर्कों की तुलना मे अनीवश्वरवादियो या सशयवादियो द्वारा किये गये उनके खडन अधिक प्रभावशाली रहे हैं जिसका स्पष्टकीरण पूर्व के अध्यायो मे किया जा चुका है। दार्शनिक काट की आलोचनाओ के बाद से ईश्वरवादियो के तर्कों का मुख्य आधार नैतिक एव धार्मिक अनुभव रहे। पुन उन्नीसवी शदी मे नैतिक अनुभवो की अस्वीकृति के बाद ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए धार्मिक अनुभव ही सबसे लोकप्रिय माध्यम के रूप मे स्वीकार किया गया है। परम्परागत बौद्धिक तर्कों का महत्व दर्शन के क्षेत्र मे लगभग समाप्त प्राय हो चुका है। परन्तु ये परम्परागत बौद्धिक प्रमाण सम्भवत सस्थागत धर्मों के क्षेत्र मे और कुछ सीमा तक समान्य लोगो मे आज भी लोकप्रिय है। कभी–कभी कुछ दार्शनिक इन युक्तियो को नये रूप मे रखने का प्रयास करते है। लेकिन स्पष्टत ये प्रयत्न अधिक प्रभावशाली नही रहे है।

हमारे लिए ईश्वर की सत्ता का विशेष महत्व तभी होता है जबकि हमे एक ठोस अनुभव का आधार मिले। ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के विविध प्रमाण यदि सफल भी हो, तो ईश्वर के बारे मे एक बौद्धिक स्वीकृति ही पैदा करती है। उसमे वास्तविक आस्था को नही। धार्मिक जीवन के लिए केवल

बुद्धि की स्वीकृति ही आवश्यक नही होती, बल्कि आस्था उस जीवन का आवश्यक अग है। यह सम्भव है कि ईश्वर की परिकल्पना कुछ तथ्यो की व्याख्या करने के लिए जरूरी समझी जाय और इसी आधार पर हम ईश्वर को मान ले। लेकिन ऐसे परिकल्पित ईश्वर से हमारी धार्मिक चेतना सन्तुष्ट नही हो सकती। हमारा जीवन लगभग वैसा का वैसा ही बना रहता है। उसे कोई 'प्रेरणा' नही मिलती। अस्तित्ववादी दार्शनिक जास्पर्स का विचार इस सम्बन्ध मे द्रष्टव्य है–

"प्रमाणित ईश्वर वास्तव मे ईश्वर नही है" बौद्धिक सन्तोष के अलावा हमारे हृदय को भी एक स्पन्दन (स्पर्श) चाहिए जिसमे भावना द्रवित होकर एक समान्य लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा मे बुद्धि के साथ चले। यह सब विशेष धार्मिक अनुभूति के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। धार्मिक अनुभूति के समर्थक सही अर्थ मे कोई युक्ति नही देते, बल्कि ईश्वर के अपरोक्ष अनुभव का दावा करते है। इस प्रकार के अनेक व्यक्ति हो चुके है जिनका दावा है कि ऐसा अनुभव सम्भव है जिसमे ईश्वर से सीधा सामना होता है– "It is, strictly speaking however not an argument but a claim to intuitive owareness, at last in any form in which it deserves very much attention philosophically The mere existence of religious emotion could hardly itself constitute a valid ground for asserting the existence of God, but what is meant by the appeal to religious experience is usually the claim in states where this religious emotion is present to have a direct apprehension "[1]

[1] The Fundamental questions of philosophy-A C Ewing Routledge Kegan paul Ltd P-238

ऐसे अनुभव धार्मिक अनुभव कहे जाते है और इसमे ईश्वर का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। उनका मत है कि, धार्मिक अनुभूतियो मे ससार के रचयिता एव सरक्षक से उसी प्रकार सीधा सम्पर्क स्थापित होता है जैसा कि सामान्य अनुभव मे हमारा सम्पर्क उन वस्तुओ से होता है, जिन्हे हम देखते या स्पर्श करते है। निश्चित रूप से ईश्वर भौतिक नही है और न ही वह भौतिक इन्द्रियो द्वारा जाना जाता है। लेकिन इस प्रकार के अनुभव मे उससे सम्पर्क भौतिक वस्तुओ जैसा ही वास्तविक है, बल्कि उससे भी अधिक वास्तविक लगता है।

ईश्वरवादी दार्शनिक रहस्यवादी अनुभूति (mystic experience), श्रुतिप्रकाश तथा अयौक्तिक (non-rational) अनुभूति को भी 'अनुभूति' सज्ञा प्रदान करते है। क्योकि धार्मिक अनुभव मे रहस्यात्मकता का तत्व अनिवार्यत विद्यमान रहता है। धार्मिक अनुभव की उसी रहस्यात्मकता से रहस्यवाद का जन्म होता है जो सभी विकसित धर्मों मे पाया जाता है। पाश्चात्य विचारको मे रहस्यवादियो की सख्या प्लोटिनस से लेकर समकालीन धर्मदर्शन तक बहुत अधिक है। बीसवी शताब्दी मे डब्ल्यू0आर0इज, अण्डरहिल इब्लिन, रूफस जोन्स (सन 1863—1948) तथा हेनरी बर्गसॉ (सन् 1859—1941) आदि उल्लेखनीय है। विलियम जेम्स (सन् 1942—1910) और डब्ल्यू0 टी0 स्टेस ने रहस्यवाद की प्रमाणिक व्याख्या की है। ईश्वर की अनुभूति को अनूठी एव स्ववर्गीय (Sui generis) मानने वाले रूडोल्फ ऑटो का नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार जॉन बेली, प्रो० ए० ई० टेलर आदि ने धार्मिक अनुभूति पर विशेष जोर दिया है।

रहस्यवादी अनुभूति की परीक्षा करने के पूर्व हम रहस्यवाद के लक्षणो एव रहस्यात्मक अनुभवो के कुछ प्रमुख उदाहरणो पर एक दृष्टि डालना आवश्यक समझते है। विलियम जेम्स ने अपनी पुस्तक "वेराइटीज ऑफ रिलीजियस एक्सपीरिएन्स' मे रहस्यवाद के चार प्रमुख लक्षण स्वीकार किया है–अनिवर्चनीयता (ineffability), ज्ञानात्मकता (rationality), क्षणभगुरता (transiency) तथा निष्क्रियता (Passivity)। अनेक रहस्यवादियो ने बतलाया है कि परमसत्ता का विवरण देना सम्भव नही है। किसी ऐसे व्यक्ति को भाषा अथवा अन्य किसी माध्यम से इस रहस्यात्मक का ज्ञान नही कराया जा सकता जिसने स्वय इसे प्राप्त नही किया है। इसी कारण इस अनुभव को ***अवर्णनीय अथवा अनिर्वचनीय*** कहा जाता है। इस दृष्टि से यह अनुभव ज्ञान से भिन्न है जिसे भाषा के माध्यम से दूसरो तक पहुँचाया जा सकता है। वस्तुत रहस्यात्मक अनुभव की तुलना सुख, दु ख सम्बन्धी व्यक्तिगत भावनाओ के साथ की जा सकती है जो अनुभवकर्ता तक ही सीमित होती है और जिनका वह शब्दो मे वर्णन नही कर सकता।

रहस्यवाद की दूसरी विशेषता ***ज्ञानात्मकता*** है। जेम्स के मतानुसार भावनाओ के समान व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी रहस्यात्मक अनुभव उन व्यक्तियो के लिए विशेष अर्थ मे ज्ञानात्मक होता है जो इसे प्राप्त करते है। इस अनुभव के फलस्वरूप उन्हे ऐसे गहन सत्यो का साक्षात् ज्ञान प्राप्त होता है जिन्हे सामान्य अनुभव और तर्कबुद्धि द्वारा जानना सम्भव नही है। रहस्यवादियो के लिए यह साक्षात् ज्ञान पूर्णत प्रामाणिक होता है, अत उनके जीवन पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पडता है।

जैसे—अनेक रहस्यवादी यह अनुभव करते है कि यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वरमय है, क्योकि ईश्वर इसमे सर्वत्र व्याप्त है। इसी प्रकार आत्मा एव ब्रह्म के पूर्ण तादात्म्य का ज्ञान भी ऐसा ही साक्षात् ज्ञान माना जाता है जिसे सामान्य अनुभव एव तर्कबुद्धि द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता। रहस्यवादी को ऐसे अलौकिक गहन सत्यो का साक्षात् ज्ञान प्रदान करने के कारण रहस्यात्मक अनुभव को ज्ञानात्मक कहा जा सकता है।

रहस्यवाद की तीसरी विशेषता *क्षणिकता* है। जेम्स का कथन है कि रहस्यात्मक अनुभव अधिक समय तक नही बचा रहता, इसकी अवधि अल्पकालीन ही होती है जिससे रहस्यवादी सामान्य अनुभव की स्थिति मे पहुँच जाता है। वह अपने इस रहस्यात्मक अनुभव को कभी—कभी बहुत अस्पष्ट रूप से ही स्मरण कर पाता है। परन्तु जब वह पुन यह रहस्यात्मक अनुभव प्राप्त करता है तो वह इसे पहचान लेता है। इस अनुभव की बार—बार पुनरावृत्ति होने पर इसकी गहनता और तीव्रता मे विकास भी होता है।

रहस्यवाद की चौथी विशेषता *निष्क्रियता* को जेम्स ने स्वीकार किया है। यह सत्य है कि योग—साधना, मन्त्रोच्चारण किसी वस्तु पर दीर्घकाल तक ध्यान केन्द्रित करना तथा कुछ अन्य उपाय रहस्यात्मक अनुभव की प्राप्ति मे सहायक हो सकते है किन्तु जब रहस्यवादी यह अनुभव प्राप्त कर लेता है तो वह अपने आपको पूर्णत किसी अलौकिक शक्ति के नियत्रण मे पाता है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि कोई महान् अलौकिक शक्ति उसके सम्पूर्ण जीवन का सचालन कर रही है और वह अपनी इच्छा से कुछ भी करने मे असमर्थ है। इस रहस्यात्मक अनुभव

की अवधि मे उसकी सकल्प शक्ति निष्क्रिय हो जाती है। इस अवधि मे उसका व्यक्तित्व उसके सामान्य व्यक्तित्व से पूर्णतया भिन्न प्रकार का हो जाता है। परन्तु इस रहस्यात्मक अनुभव की समाप्ति के पश्चात् भी उसके मन मे इसकी कुछ स्मृति अवश्य बनी रहती है और इसी कारण उसके व्यावहारिक जीवन पर अनुभव का गहरा प्रभाव पडता है। यह अनुभव उसके आतरिक तथा वाह्य जीवन मे वाछनीय परिवर्तन करता है। इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से भी रहस्यवादी के लिए इस अनुभव का बहुत महत्व है। सक्षेप मे जेम्स के मतानुसार उपर्युक्त सभी विशेषताऐ रहस्यात्मक अनुभव के लिए महत्वपूर्ण है।

विलियम जेम्स तथा डब्ल्यू० टी० स्टेस दोनो ही इस रहस्यात्मक अनुभव को वास्तविक और महत्वपूर्ण मानते है। उनका कथन है कि हमारी सामान्य चेतना के अतिरिक्त एक ऐसी चेतना का अस्तित्व भी है जो इस सामान्य चेतना से पूर्णत भिन्न और असाधारण है। रहस्यात्मक अनुभव का सम्बन्ध हमारी सामान्य चेतना से न होकर इसी असाधारण चेतना से है। इस असाधारण चेतना के स्वरूप का वर्णन करते हुए स्टेस कहते है कि इसमे उन सभी तत्वो का अभाव होता है जो हमारी सामान्य चेतना के अनिवार्य तत्व है। सवेदन, विचार, प्रवृत्तियॉ, भावनाएँ, इच्छाए आदि तत्व हमारी सामान्य चेतना मे अनिवार्यत पाए जाते है। वस्तुत इन्ही तत्वो द्वारा इस चेतना का निर्माण होता है जिनके अभाव मे इसका अस्तित्व सभव नही है। परन्तु स्टेस के अनुसार रहस्यात्मक चेतना वह असाधारण चेतना है जिसमे ये तत्व नही पाए जाते।

इस दृष्टि से यह रहस्यात्मक चेतना हमारी सामान्य चेतना से पूर्णत भिन्न है। अपनी इसी मान्यता के आधार पर इस चेतना के स्वरूप की व्याख्या करते हुए स्टेस ने लिखा है कि–"रहस्यात्मक चेतना मे किसी प्रकार के सवेदन बिल्कुल नही पाए जाते। इसमे अवधारणाओ अथवा विचारो का भी अभाव होता है। यह सवेदनात्मक बौद्धिक चेतना बिल्कुल नही है। इसलिए इस सवेदनात्मक बौद्धिक चेतना के तत्वो मे से किसी के आधार पर इसका वर्णन या विश्लेषण नही किया जा सकता जिससे यह पूर्णत भिन्न है। इसी कारण रहस्यवादी सदा यह कहते है कि उनके अनुभव 'अवर्णनीय' है।"[1]

जेम्स के समान स्टेस भी यह मानते है कि हमारी सामान्य चेतना के समान ही इस असाधारण रहस्यात्मक चेतना का भी वास्तव मे अस्तित्व है। यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति ऐसी असाधारण चेतना की कल्पना नही कर सकता, किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि जो सामान्य व्यक्ति के लिए अकल्पनीय है उसका अस्तित्व हो ही नही सकता। मनुष्य अपने अनुभव तथा अपनी तर्कबुद्धि की अपरिहार्य सीमाओ के कारण इस असीम ब्राह्माण्ड का बहुत थोडा सा ही ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ है। ऐसी स्थिति मे यह कहना उसकी केवल धृष्टता होगी कि जो कुछ वह नही जान सकता अथवा जानता उसका अस्तित्व ही नही है। स्टेस का मत है कि कुछ व्यक्तियो को रहस्यात्मक अनुभव अवश्य प्राप्त होते है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को अस्वीकार करना हमारे लिए उचित नही होगा। हॉ इस सम्बन्ध मे विवाद सम्भव हो सकता है कि इस रहस्यात्मक अनुभव का

1 डब्ल्यू टी० स्टेस का लेख दि टीचिंग्स ऑफ दि मिस्टिक्स बी०ए० ब्रोडी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'रीडिग्स इन दि फिलॉसाफी ऑफ रिलिजन–ऐन ऐनालिटिक ऐप्रोच में सकलित पृ० 503–504।

हमारे लिए कोई विशेष मूल्य है या नही। स्टेस स्वय कहते है कि बहुत कम व्यक्ति ही यह आसाधारण अनुभव प्राप्त करने मे समर्थ होते है।

अत इसे असामान्य मनोविज्ञान का विषय ही माना जा सकता है। इसका अर्थ यही है कि उनके अनुसार यह रहस्यात्मक अनुभव सामान्य व्यक्ति के लिए बोधगम्य नही हो सकता। परन्तु फिर भी वे इसकी वास्तविकता का निषेध करना युक्तिसगत नही मानते।

स्टेस का कथन है कि रहस्यवाद को मुख्यत दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—बर्हिमुखी रहस्यवाद तथा अतर्मुखी रहस्यवाद। लगभग सभी विकसित धर्मों और सस्कृतियो मे ये दोनो प्रकार के रहस्यवाद पाए जाते है। इन दोनो मे रहस्यवादी जगत् के मूल मे एक ही आध्यात्मिक दैवी सत्ता का अनुभव करता है, किन्तु इस अनुभव की प्राप्ति उसे भिन्न—भिन्न माध्यमो से होती है।

बहिर्मुखी रहस्यवाद मे रहस्यवादी भौतिक जगत् के माध्यम से इस आध्यात्मिक सत्ता का अनुभव प्राप्त करता है। विभिन्न रहस्यवादी इसी आध्यात्मिक सत्ता को 'ईश्वर', 'ब्रह्म' 'परमतत्व' आदि भिन्न—भिन्न सज्ञाए देते है। बहिर्मुखी रहस्यवाद मे रहस्यवादी वाह्य जगत् के भेदो का अनुभव करता रहता है, अत वह असाधारण अनुभव की उस उच्चतम अवस्था को प्राप्त नही कर पाता जिसमे हमारी सामान्य चेतना के समस्त तत्वो का नितात अभाव होता है। इसी कारण स्टेस इस प्रकार के रहस्यवाद को अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण मानते है। उनका मत है

कि बहिर्मुखी रहस्यवाद अतर्मुखी रहस्यवाद की प्रारम्भिक अवस्था है जिसके पश्चात् रहस्यवादी रहस्यात्मक अनुभव की उच्चतम स्थिति को प्राप्त करने मे समर्थ होता है।

वस्तुत स्टेस अन्तर्मुखी रहस्यवाद को ही विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानते है और इसी कारण उन्होने इसकी विस्तृत विवेचना की है। जब रहस्यवादी वाह्य जगत् के स्थान पर अपने भीतर ही आध्यात्मिक सत्ता का साक्षात् अनुभव करता है तो उसकी इस स्थिति को 'अन्तर्मुखी रहस्यवाद' की सज्ञा दी जाती है। इसमे रहस्यवादी पूर्णत अन्तर्मुखी हो जाता है और वाह्य जगत् के साथ उसका कोई सम्बन्ध नही होता। सवेदन, विचार, इच्छा, भावना आदि उसकी सामान्य चेतना के समस्त तत्व पूर्णत लुप्त हो जाते है, और इनका स्थान असाधारण रहस्यात्मक चेतना ले लेती है। यही वास्तविक रहस्यात्मक अनुभव है और जब तक रहस्यवादी इस अन्तर्मुखी रहस्यवाद की स्थिति मे रहता है तब तक वह वाह्य जगत् सम्बन्धी किसी प्रकार के अनुभव से प्रभावित नही होता। इसी अवस्था मे वह जगत् की मूल अतीद्रिय आध्यात्मिक सत्ता का साक्षात् अनुभव प्राप्त करता है। यद्यपि रहस्यवादी इस प्रकार के रहस्यात्मक अनुभव को अनिर्वचनीय मानते है फिर भी हमे सभी विकसित धर्मों मे इस अनुभव का कुछ सीमा तक वर्णन उपलब्ध होता है। यह वर्णन प्राय सक्षिप्त रूप मे ही पाया जाता है और इसमे रहस्यवादी स्वय अपने विषय मे कुछ न कहकर अप्रत्यक्ष रूप से ही इसे प्रस्तुत करता है। उदाहरणार्थ इसी रहस्यात्मक चेतना को ब्रह्म के रूप मे प्रस्तुत करते हुए माडूक्यउपनिषद मे कहा गया है कि—

यह इन्द्रियो, मन तथा बुद्धि से परे और अनिर्वचनीय है। यही अद्वैत की विशुद्ध चेतना है जिसमे वाह्य जगत् का सम्पूर्ण ज्ञान समाप्त हो जाता है। यही अनिर्वचनीय शान्ति और परम सुख है। यह अद्वितीय तथा जगत् की परम सत्ता है।" स्टेस के मतानुसार ईसाई धर्म के रहस्यवाद मे भी हमे जगत् की परम सत्ता का ऐसा ही वर्णन उपलब्ध होता है। इससे हम यही निष्कर्ष निकाल सकते है कि विभिन्न कालो तथा धर्मों के ये रहस्यवादी वस्तुत एक ही प्रकार के रहस्यात्मक अनुभव का वर्णन करते है।

स्टेस के मतानुसार रहस्यवादी अपने इस रहस्यात्मक अनुगव को प्राय' ऐसी भाषा मे अभिव्यक्त करते है जो विरोधाभासो रो पूर्ण होती है। सम्भवत इसका कारण यह है कि रहस्यवादी अपने इस असाधारण अनुभव को सामान्य भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने मे अपने आपको असमर्थ पाते है। हमारी गाषा का निर्माण सामान्य अनुभवो की अभिव्यक्ति के लिए ही हुआ है, अत इसके द्वारा रहस्यात्मक अनुभव को अभिव्यक्त करना रहस्यवादी के लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है। यही कारण है कि रहस्यात्मक अनुभव को अभिव्यक्त करने वाली रहस्यवादियो की भाषा मे प्राय विरोधाभास पाए जाते है। इसी कारण कुछ रहस्यवादी रहस्यात्मक अनुभव को शून्य का अनुभव' कहते है। इस अनुभव के विषय मे बौद्ध दर्शन के महायान सम्प्रदाय का यही मत है। कुछ रहस्यवादी मुखरमौन, 'आलोकमय अधकार' आदि विरोधाभासपूर्ण वाक्यो का प्रयोग करते है।

उपर्युक्त अन्तर्मुखी रहस्यात्मक अनुभव को प्राप्त करने के लिए सभी विकसित धर्मों मे कुछ विशेष उपायो अथवा विधियो का वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ भारत मे बहुत प्राचीन काल से अपने योगी विभिन्न प्रकार की योग–साधनाओ द्वारा इस अनुभव की प्राप्ति के लिए प्रयास करते रहते है। प्राय यह कहा जाता है कि योग–दर्शन वर्णित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि उपाय इस रहस्यात्मक अनुभव को प्राप्त करने मे सहायक होते है। ईसाई धर्म के रहस्यवादी भी रहस्यात्मक अनुभव की प्राप्ति के लिए ध्यान केन्द्रित करने की विधि को बहुत महत्व देते है। इसी तरह वैराग्य भी रहस्यात्मक अनुभव प्राप्त करने का आवश्यक साधन माना जाता है।

अब हम धार्मिक अनुभूति अथवा रहस्यात्मक अनुभूति को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख रहस्यवादी दार्शनिको, सन्तो एव विचारको के द्वारा स्वत किये गये अनुभवो पर एक दृष्टि डालने का प्रयास करते है–

1 धार्मिक अनुभव ने कार्डिनल न्यूमन का सारा जीवन ही बदल दिया था। कई साल बाद उन क्रान्तिकारी क्षणो का जिक्र करते हुए उन्होने कहा था–

'इस अनुभव के सच्चे होने के बारे मे मै इससे भी अधिक निश्चित हूँ कि मेरे हाथ और पैर है।"

2 गाँधी जी ने भी एक बार कहा था कि ईश्वर की उपस्थिति का अहसास मुझे इस अहसास से भी अधिक गहरा होता है कि मेरे सामने कुर्सी और मेज है।

3 ईश्वर सम्बन्धी वर्णन *उपमामय* (Metaphorical) अथवा *दृष्टान्तमय* (Parabolic) हो जाते है। जब राजा मिलिन्द ने तथता अथवा निर्वाण के स्वरूप के सम्बन्ध मे नागसेन से बार–बार प्रश्न किया तो नागसेन चुप्पी साधे रहे। चूँकि निर्वाण अरूप है, इसलिए उसका उल्लेख नही किया जा सकता है, लेकिन इसके कुछ गुणो का वर्णन उपमाओ द्वारा किया जा सकता है। राजा मिलिन्द के अधीर हो जाने पर नागसेन ने निर्वाण के गुणो का इस प्रकार उपमामय वर्णन किया है–

"हे राजन ! कमल का एक गुण, जल के दो, औषधि के तीन, समुद्र के चार, भोज के पॉच, दिक् के दस, कल्पतरू के तीन, लाल सन्दल के तीन, घीके फेन के तीन और पर्वत चोटी के पॉच गुण निर्वाण मे निहित है। जिस प्रकार कमल जल से अदूषित रहता है उसी प्रकार निर्वाण कुवृत्तियो से अदूषित रहता है।"
मिलिन्द प्रश्न IV 8 65, 66

4 "Though God is everywhere present, yet he is only present to thee in the deepest and most central part of thy soul The natural senses cannot possess God or unite thee to Him, nay, thy inward faculties of under standing, will and memory can only reach after God, but cannot be the place of his habitation in thee But there is a root or depth of thee from whence all these faculties come forth, as lines from a centre, or as branches from the body of the tree This depth is called the centre the fund or bottom of the soul This depth is the unity, the eternity-I had almost said the infinity of

the soul, for it is so infinite that nothing can satisfy it or give it rest but the infinity of God "[1]

5 "That everyman was enlightened by the Divine Light of Christ, and I saw it shine through all, and that they that believed in it came out of condemnation and came to the light of Life, and become the children of it And they that hated it and did not believe in it, were condemned by it, through they made a profession of Christ This, I saw in the pure openings of light, without the help of any man neither did I then know where to find it in the Scriptures, though afterwards, searching the Scriptures, I found it [2]

6 "There is a spirit in the soul, untouched by time and flesh, flowing from the spirit, remaining in the spirit, itself wholly spiritual In this principal is God, over verdant, ever flowering in all jog and glory of to this actual self Sometimes I have called these principles the tabernacle of the soul, sometimes a spiritual light, anon I say it is a spark But now I say that it is more exalted over this and that than the heavens are exalted above the earth So now I name it in a nobler fashion it is free of all names and void of all forms It is one and simple, as God is one and simple, and no man can in any wise behold it "[3]

1 William Law quoted in 'The Perennial Philosophy' by Aldous Haxley Chatoo & Windous P 8
2 From fox's journal quoted in 'The perennials philosophy' by Aldous Heexley P 20
3 Eckhert quoted in Ibid , P 22

7 "To gange the soul we must gange it with God, for the ground of God and the Ground of the soul are one and the same "[1]

8 "The knower and the known are one Simple people imagine that they should see God, as if the stood there and they here This is not so God and I, we are one in knowledge "[2]

9 "I have been crucified with Christ, it is no longer I who live, but Christ who lives in me, and the life I now live in the flesh I live by faith in the son of God, who loved me and gave himself for me "[3]

प्रो० ए० ई० टेलर (1869–1945) ने अपने लेख "The vindication of Religion" मे कहते है कि धार्मिक अनुभव अपने विषयवस्तु की वास्तविकता का प्रमाण है। धार्मिक अनुभवो को ठीक ढग से स्पष्ट करने के लिए एक कलाकार का सुन्दरता के प्रति उसके लगाव का उदाहरण प्रस्तुत करते है। यह आवश्यक नही है कि सुन्दरता के प्रति कलाकार के लगाव की तरह सभी व्यक्तियो का लगाव हो, इसी तरह यह आवश्यक नही है कि सभी व्यक्तियो को ईश्वर का अनुभव हो। धार्मिक अनुभव उसी प्रकार उपयुक्त है जिस प्रकार कलाकार का सुन्दरता के प्रति लगाव। एक कलाकार सुन्दरता का दर्शन करता है, लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि एक सामान्य व्यक्ति जो कलाकार नही है वह भी वहॉ सुन्दरता का दर्शन करे। उदाहरण के लिए सडक के किनारे एक चित्र गिरा हुआ है, कोई भी व्यक्ति उस

1 Ekhart quoted in Ibid , P 19
2 Ekhart quoted in Ibid , P 19
3 St Paul quoted in 'God and Reason' ed L Miller, P 101

पर ध्यान नही दे रहा है, लेकिन एक कलाकार जो इस सडक से गुजर रहा है उसे देखता है और ध्यान देता है, क्योकि वह उस चित्र मे सुन्दरता का दर्शन करता है। वही चित्र एक कलाकार के लिए सुन्दर और ध्यान देने के योग्य है परन्तु एक सामान्य व्यक्ति जो कलाकार नही है के लिए वह सुन्दर और ध्यान देने योग्य नही होती।

यह सत्य है कि एक व्यक्ति जो सर्वोच्च कलाकार के गुणो से युक्त है सुन्दरता के लिए अपने ज्ञान का विकास करता है। एक कलाकार की यह विशेषता होती है कि वह इन अनुभव के तत्वो का प्रयोग विश्व के रहस्यो को खोलने मे करता है। इसलिए एक धार्मिक व्यक्ति का आशय उस व्यक्ति से है जो अपने धार्मिक अनुभव के विशेष प्रकाश मे सम्पूर्ण वास्तविकता को देखता है।

मानव जीवन के इतिहास मे धार्मिक अनुभवो के अनेक दृष्टान्त मिलते है जिनका अवलोकन करने पर ऐसा नही लगता कि ये व्यक्ति जान–बूझकर झूठ बोल रहे है। इस पर सशय करना बेकार है कि इस प्रकार के धार्मिक अनुभव होते है और व्यक्ति ईमानदारी रो यह विश्वास करता है कि इन अनुभवो मे उसका सीधा सम्पर्क ईश्वर से होता है। लेकिन यह प्रश्न अवश्य किया जा सकता है कि क्या ये अनुभव सच्चे है? अर्थात क्या इन अनुभवो मे हम वास्तव मे ईश्वर का सामना करते है, या हमे केवल ऐसा महसूस ही होता है? पारिभाषिक शब्दो मे धार्मिक अनुभव वस्तुगत (Objcctivc) है या आत्मगत (Subjcctive)?

उपरोक्त प्रश्न के अनेक प्रकार के उत्तर हमे प्राप्त होते है। युक्तियाँ देने का अवसर यही आता है। पहला दृष्टिकोण अस्तिको का है। यह स्वीकार करते हुए भी कि इस सम्बन्ध मे अनेक अनुभव भ्रामक हो सकते है, वे निश्चित रूप से यह मानते है कि कुछ धार्मिक अनुभूतियो मे मनुष्य वास्तव मे विश्व के आध्यात्मिक आधार, ईश्वर के सम्पर्क मे आता है। अर्थात् ईश्वर का अनुभव वस्तुगत है। दूसरा दृष्टिकोण ठीक इसके विपरीत है। इसको अपनाने वाले समस्त धार्मिक अनुभूतियो को आत्मगत मानते है। वे ईश्वर को मात्र आभास या भ्रम मानते हैं। फ्रायड और रसेल इस प्रकार के विचारको मे प्रमुख है। रसेल का कहना है कि—"वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन दो प्रकार के व्यक्तियो मे कोई भेद नही है जो या तो कम खाकर स्वर्ग देखते है, या अत्यधिक नशा करके साँप"। एक अन्य तीसरे प्रकार का मत ईश्वरवादियो के विरूद्ध होते हुए कुछ अधिक उदारवादी है, दूसरे दृष्टिकोण की तुलना मे। इसे स्वीकार करने वालो का कहना है कि धार्मिक अनुभूतियो की सच्चाई को हम सिद्ध नही कर सकते। लेकिन वे निश्चित रूप रो भ्रामक ही है, यह कहना भी विवेकपूर्ण नही होगा। ये विचारक सन्देह की स्थिति या 'स्थगित निर्णय' का समर्थन करते है। अन्तिम दृष्टिकोण एक नये प्रकार के बुद्धिजीवियो का है जिनमे ब्रॉड और स्टेस प्रमुख है। ये विचारक धार्मिक अनुभूति को मूलरूप से वस्तुगत मानते है, जिसका एक सक्षिप्त विवरण हम रहस्यवाद के विवेचन मे स्पष्ट कर चुके है। इनके अनुसार इन अनुभूतियो मे हम यथार्थ के ऐसे पक्ष का बोध या साक्षात्कार करते है जो हमे अपने साधारण अनुभवो मे नही प्राप्त होता। इनके मूल्य एव मानव

जीवन के लिए इनके महत्व से भी इनकार नही किया जा सकता। लेकिन यथार्थ के इस पक्ष को ईश्वर नाम देने मे इन विचारको को परेशानी होती है। परम्परा से 'ईश्वर' शब्द के साथ कुछ अर्थ रालग्न हो गये है। धर्मशास्त्रो मे भी हमे अनेक वर्णन मिलते है। लेकिन इन सबका औचित्य धार्मिक अनुभूति से प्रमाणित नही होता। ईश्वरवादियो की अनेक मान्यताओ को हम न भी स्वीकार करे, फिर भी मूलत अनुभूति विश्वसनीय है।

प्रथम और अन्तिम दृष्टिकोण वालो से यही प्रश्न किया जा सकता है कि किस आधार पर वे धार्मिक अनुभूतियो की सच्चाई का दावा करते है? ये धार्मिक अनुभूतियॉ इन्द्रियप्रत्यक्ष की तरह अनुमान नही है अपितु इन्हे अपरोक्ष बोध कहा जाता है। परन्तु इन्द्रियप्रत्यक्ष के लिए हमारे पास कुछ निश्चित मापदण्ड है जिनके आधार पर हम सच्चे और भ्रामक प्रत्यक्षो मे भेद करते है, जैसे कि हम अपने इन्द्रियप्रत्यक्षो को अधिक सावधानी बरतते हुए दोहरा सकते है, उनकी परीक्षा हम सतुलित और निष्पक्ष प्रेक्षको के प्रमाण से करा सकते है तथा किसी विशेष इन्द्रिय प्रत्यक्ष को सच्चा मानने पर जो कथन तार्किक परिणाम के रूप मे निकलते है, उनका परीक्षण कर सकते है। परन्तु क्या इस तरह के परीक्षण धार्मिक अनुभूतियो के सम्बन्ध मे सम्भव है? समर्थको का उत्तर है कि धार्मिक अनुभव के क्षेत्र मे भी एकदम उसी तरह का परीक्षण तो नही लेकिन कुछ समान परीक्षण अवश्य सम्भव है। मापदण्डो की सादृश्यता का वह दावा करते है।

प्रथम हमे धार्मिक अनुभव के अनेक दृष्टात मिलते है और इन दृष्टातो मे एक आश्चर्यजनक सहमति दिखाई पडती है। दूसरे जिन व्यक्तियो को ये धार्मिक अनुभूतियॉ हुई है उनमे से

कम से कम कुछ का बौद्धिक और नैतिक स्तर अत्यन्त ऊँचा रहा है। अन्तत हमारा ध्यान इस बिन्दु पर भी जाता है कि जिनको ये अनुभव हुए उनके जीवन मे इसके परिणामस्वरूप एक अत्यन्त उपयोगी परिवर्तन आया। अब हम थोडा विस्तृत रूप से इन बिन्दुओ का परीक्षण करेगे।

1 यह तर्क दिया जाता है कि जिन व्यक्तियो को धार्मिक अनुभव हुए है उनमे केवल तीव्रता से महसूस करने वाले रहस्यवादी या सत ही नही है, बल्कि अनेक ऐसे साधारण और विनम्र आस्तिक भी शामिल है जिन्होने ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव अपनी प्रार्थना या ध्यान की प्रक्रिया मे, या गम्भीर तनाव और क्रान्ति के क्षणो मे किया है। इनमे यहूदी, ईसाई, मुसलमान, हिन्दू आदि सभी धर्मों के, ससार के विभिन्न क्षेत्रो के और मानवीय इतिहास के विभिन्न युगो के व्यक्ति हुए है। अनुभूति की यह व्यापकता क्या उनके वस्तुगत होने का प्रमाण नही है? ये अनुभूतियॉ सार्वभौमिक अवश्य नही है लेकिन इनसे कुछ प्रमाणित नही होता, क्योकि किसी भी अनुभव को प्राप्त करने के लिए कुछ धारण करने की शक्ति भी आवश्यक होती है। अत तानबधिर सगीत का रसास्वादन नही कर सकता। जिन लोगो को धार्मिक अनुभव नही हुआ है उनके प्रमाण का इस सम्बन्ध मे कोई तार्किक महत्व नही है, क्योकि उन्होने इस प्रकार के अनुभव को पाने की शर्तों को पूरा करने का कोई प्रयास नही किया है। पुन धार्मिक अनुभूतियो के अनेक दृष्टात केवल सख्या के दृष्टिकोण से ही महत्वपूर्ण नही है, अपितु उनकी सामग्री मे एक साम्यता

की उपस्थिति अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि उन अनुभूतियो के विवरणो मे पर्याप्त अन्तर भी रहता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि अनुभव कने वाला किस युग का है और वह किस विशेष धार्मिक परम्परा का अनुयायी है। लेकिन विभन्न अन्तरो के बावजूद उन अनुभवो के मूलभूत लक्षण एक समान ही है। इन सभी धार्मिक अनुभूतियो के वर्णनो मे यह बात समान रूप से कही गयी है कि हमारा सम्पर्क एक ऐसी सत्ता से होता है जो व्यक्ति से बहुत बडी है और जो किसी न किसी अर्थ मे परमसत्ता है। साथ ही इस सत्ता से हगे प्रेम और आवश्वासन मिलता है। ***सेनइज ने कहा है कि–***

"जब हम किसी उच्चतम आध्यात्मिक अनुभव का वर्णन पढते है तो हमारे लिए यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि वह मध्ययुग मे लिखा गया था या आधुनिक युग मे, योरोप के उत्तर मे लिखा गया था या दक्षिण मे, इसे एक कैथोलिक ने लिखा है या प्रोटेस्टेन्ट ने"।

2 धार्मिक अनुभूति की सच्चाई का दूसरा प्रमाण अनुभवकर्ता की 'गुणात्मक योग्यता भी कम महत्वपूर्ण नही है। दावा करने वालो मे हालॉकि पागल, सनकी एव सीधे धोखेबाज भी रहे है, लेकिन अधिकाश सख्या ऐसे लोगो की है जिनकी ईमानदारी पर कोई सशय नही किया जा सकता। यह सोचना पागलपन ही होगा कि पास्कल, न्यूमन, रामकृष्ण परमहस, गॉधी या टॉलस्टाय जैसे पुरूष एक बडे षडयन्त्र मे सलग्न थे। यह मानना भी बौद्धिक नही होगा कि इन व्यक्तियो मे विवेचना की शक्ति की कमी थी। इन

पुरूषो का बौद्धिक और नैतिक स्तर उनके अनुभव की सच्चाई का यथेष्ट आश्वासन देता है।

3 अन्तिम प्रमाण के रूप मे यह दावा किया जाता है कि धार्मिक अनुभूति के उपयोगी परिणाम उनके सच्चे होने के अप्रत्यक्ष प्रमाण है। इस अनुभव का अत्यन्त रूपान्तकारी प्रभाव अनुभवकर्ता के समस्त जीवन और आचरण पर पडता है। सारा जीवन एक विशेष आनन्द से भर जाता है। व्यक्तियो को केवल अपना जीवन ही नही सम्पूर्ण विश्व अर्थपूर्ण लगने लगता है। उनको एक नई शक्ति और एक नई कोमलता तथा सवेदनशीलता मिल जाती है। यह अनुभव कमजोर व्यक्तियो को साहसी बना देता है और अहकारी को विनम्र। उनमे यह तीव्रतम दु ख और कठोर परिश्रम तथा कष्टो को सहन करने की क्षमता भर देता है। इस अनुभव के परिणामस्वरूप ऐसी शान्ति और शुभ्रता भर जाती है जो कि अतिमानवीय लगती है। क्या यह मानना तर्कसगत लग सकता है कि इतना मूल्यवान अनुभव वस्तुगत नही है या यथार्थ मे उसका आधार नही है?

अनभुव की व्यापकता और उनके बीच सहमति की युक्ति का खण्डन करने के लिए मनोविज्ञान का सहारा लिया गया है। तर्क यह दिया गया है कि हमारी अतृप्त इच्छाए इन काल्पनिक अनुभवो को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। जर्मन दार्शनिक फायरवास और उसके बाद फ्रायड तथा उसके अनुयायियो ने धार्मिक अनुभवो की इस प्रकार की मनौवैज्ञानिक व्याख्या को बौद्धिको के बीच एक प्रकार का फैशन सा बना दिया था। सक्षेप मे इस सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस विचार

के अनुसार जिन लोगो ने इस जीवन मे प्यार और सहानुभूति नही पाई है या भय तथा हीनता के भाव से ग्रसित रहे है उन्होने अपने मन मे अचेतन रूप से एक काल्पनिक ससार की रचना करके उससे सन्तुष्टि पाने का प्रयास किया है।

हमारे उच्च अनुभवो की इस प्रकार की प्राकृतिक व्याख्याए का महत्व अब कम पड गया है। जिन्होने यह व्याख्याऐ दी थी उनका धार्मिक अनुभव से कभी प्रत्यक्ष परिचय नही रहा है और उनमे से अधिकाश शुरू से ही धर्म के विरोधी रहे है। ब्रॉड ने इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो को पक्षपातपूर्ण माना है और व्यग्य करते हुए कहा है–

"मै सगीत की प्रकृति और उसके जीवन मे उपयोग से सम्बन्धित किसी ऐसे सिद्धान्त को स्वीकार करने मे हिचकूॅगा जिसे एक ऐसे मनोवैज्ञानिक ने प्रतिपादित किया हो जिसकी पत्नी हाल मे ही एक सगीतज्ञ के साथ भाग गई हो"। सच बात तो यह है कि हम इस ससार की दिनचर्या और परेशानियो मे इतने सलग्न रहते है कि हमने कभी सच्चे धर्म को पाने के लिए अपनी शक्तियो का सचय नही किया। मनोविज्ञान तो एक दुधारी तलवार की तरह है। इसका उपयोग हम यह व्याख्या करने मे भी कर सकते है कि यथार्थ का एक दैविक पक्ष होते हुए भी किस प्रकार लोग अनीश्वरवादी हो जाते है और जो लोग अनुभव के द्वारा धर्म को अन्दर से जानते हैं उनको सभी मनोवैज्ञानिक व्याख्याए मात्र बचकानी और बेतुकी लगती है, यह भी एक ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण तथ्य है। विभिन्न आलोचनाओ से अपरिचित न होने पर भी धार्मिक या रहस्यवादी अनुभूति की प्रामाणिकता पर उनके वहन करने वाले विशिष्ट व्यक्तियो को कभी कोई

सन्देह नही हुआ। अनुभूति से उत्पन्न विश्वास को हिलाया' तक नही जा सका है। शायद इस प्रकार के नि सदेह मूल्यवान अनुभव की प्रकृति ही ऐसी है कि वह अपनी सत्यता का साक्ष्य स्वय प्रस्तुत करती है। ऐसी दशा मे किसी बाहरी साक्ष्य की मॉग करना व्यर्थ है।

अन्तत यह प्रश्न विचारणीय है कि धार्मिक अनुभव की वस्तुनिष्ठता अथवा ज्ञानात्मकता कहॉ तक उचित है। रहस्यवादी गहन एव अलौकिक सत्यो के साक्षात् ज्ञान की प्राप्ति का दावा करते है। वे यह कहते है कि उन्हे रहस्यात्मक अनुभव द्वारा ऐसे अलौकिक सत्यो का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है जिन्हे ज्ञान के सामान्य साधनो के माध्यम से जानना सम्भव नही है। इस ज्ञान को वे पूर्णत निश्चित एव असदिग्ध मानते है। परन्तु उनका यह दावा कहॉ तक उचित एव युक्तिसगत है। वस्तुत इस प्रश्न का कोई निश्चित तथा सर्वमान्य उत्तर देना बहुत कठिन है, क्योकि इसके सम्बन्ध मे दार्शनिको मे तीव्र मतभेद है। जैसे—स्टेस का विचार है कि रहस्यवादी को अपने रहस्यात्मक अनुभव द्वारा दि्ककाल से परे आध्यात्मिक सत्ता अथवा असीम परमतत्त्व का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त होता है जो पूर्णत असदिग्ध एव वस्तुपरक है। वह उन अलौकिक सत्यो का साक्षात् अनुभव करता है जो सामान्य मनुष्यो के लिए अज्ञेय है।[1]

परन्तु अनेक दार्शनिक धार्मिक अनुभूति अथवा रहस्यवाद के विषय मे स्टेस के उपर्युक्त दावे को पूर्णत स्वीकार नही करते। इस सम्बन्ध मे विलियम जेम्स का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने

1 डब्ल्यू० टी० स्टेस का लेख दि टीचिंग्स ऑफ दि मिस्टिक्स' बी०ए० ब्रोदी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'रीडिंग्स इन दि फिलॉसफी ऑफ रिलिजन—ऐन ऐनालिटिक ऐप्रोच' मे सकलित पृ० 515।

अपनी पुस्तक वेराइटीज ऑफ रिलीजियस ऐक्सपीरियॅन्स' मे स्टेस से पूर्व इस समस्या पर विस्तारपूर्वक विचार किया था। जेम्स का मत है कि रहस्यवादी अलौकिक सत्यो का जो प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने का दावा करता है वह स्वय उसके लिए निश्चय ही प्रामाणिक है। जिन व्यक्तियो को रहस्यात्मक अनुभव प्राप्त नही हुआ है और इसी कारण जो रहस्यवादी के इस अलौकिक ज्ञान से अनभिज्ञ है उन्हे उसके इस ज्ञान से अप्रामाणिक तथा मिथ्या मानने का कोई अधिकार नही है। यह सत्य है कि रहस्यात्मक अनुभव से अनभिज्ञ व्यक्तियो की सख्या बहुत अधिक है, किन्तु इससे यह प्रमाणित नही होता कि वे जो ज्ञान प्राप्त करने मे असमर्थ है उसका अस्तित्व हो ही नही सकता। रहस्यवादी अपने रहस्यात्मक अनुभव द्वारा जो साक्षात् ज्ञान प्राप्त करता है वह उसके लिए उतना ही निश्चित और असदिग्ध है जितना साधारण व्यक्तियो के लिए प्रत्यक्ष ज्ञान उसे अपने इस ज्ञान को सत्य मानने और उसके अनुरूप आचरण करने का पूर्ण अधिकार है। सामान्य व्यक्ति उसे इस ज्ञान को मिथ्या मानने के लिए विवश नही कर सकते। अपनी सख्या और शक्ति की अधिकता के कारण वे उसे बदीगृह या पागलखाने मे तो डाल सकते है, किन्तु उसे अपने विश्वासो का परित्याग करने के लिए विवश नही कर सकते। इसके अतिरिक्त रहस्यवादी के साथ इस प्रकार के अनुचित व्यवहार द्वारा उसके ज्ञान को मिथ्या प्रमाणित नही किया जा सकता।

परन्तु जेम्स के उपर्युक्त विचारो एव पूर्ववर्णित तथ्यो से यह निष्कर्ष निकालना उचित नही होगा कि वे रहस्यवादियो के अलौकिक ज्ञान को वस्तुपरक तथा सभी मनुष्यो के लिए

प्रामाणिक मानते है। रहस्यवादियो को यह आग्रह नही करना चाहिए कि सामान्य व्यक्ति उनके असाधारण ज्ञान को वस्तुपरक तथा प्रामाणिक ज्ञान के रूप मे स्वीकार करे। वस्तुत उन्हे इस प्रकार का आग्रह करने का कोई अधिकार नही है। इसका कारण यह है कि रहस्यवादियो का असाधारण अनुभव सामान्य व्यक्तियो के लिए वस्तुपरक और प्रामाणिक ज्ञान का स्रोत नही हो सकता। इसके अतिरिक्त रहस्यवादी अपने रहस्यात्मक अनुभव द्वारा जो अलौकिक ज्ञान प्राप्त करने का दावा करते हे उसकी व्याख्या के सम्बन्ध मे स्वय उनमे पर्याप्त मतभेद हैं। वे अपने–अपने धार्मिक सिद्धान्तो के अनुसार इस ज्ञान की भिन्न–भिन्न व्याख्याए करते है। इस प्रकार जेम्स रहस्यवादियो के अलौकिक ज्ञान को स्वय उनके लिए प्रामाणिक मानते हुए भी सभो मनुष्यो के लिए उसे सत्य एव वस्तुपरक ज्ञान के रूप मे स्वीकार नही करते।

कुछ समकालीन दार्शनिको ने भी रहस्यात्मक ज्ञान की प्रामाणिकता की समस्या पर विचार किया है। इन दार्शनिको मे तर्कीयप्रत्यक्षवाद के समर्थक ए०जे० एयर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे वस्तुपरक ज्ञान के अर्थ मे रहस्यात्मक ज्ञान की सम्भावना को पूर्णत अस्वीकार करते है। उनका मत है कि रहस्यवादी अलौकिक सत्यो के जिस ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने का दावा करता है उसे सत्य और प्रामाणिक मानने के लिए हमारे पास कोई युक्ति सगत आधार नही है। ऐसे रहस्यात्मक ज्ञान की पाप्ति का दावा करके वह केवल अपनी व्यक्तिनिष्ठ मनोदशा का ही वर्णन करता है, किसी वस्तुपरक तथ्य का नही। ऐसी स्थिति मे उसके इस व्यक्तिनिष्ठ अनुभव को वास्तविक अर्थ मे ज्ञान नही कहा जा सकता।

रहस्यात्मक ज्ञान के विषय मे अपनी उपर्युक्त मान्यता को स्पष्ट करते हुए एयर ने लिखा है कि—

'अनुभव द्वारा सत्यापित प्रतिज्ञप्तियो को अभिव्यक्त करने के स्थान पर रहस्यवादी किसी प्रकार की बोधगम्य प्रतिज्ञप्तियॉ व्यक्त करने मे नितात असमर्थ है। इसलिए हम यह कहते हैं कि उसकी अन्त प्रज्ञा ने उसके समक्ष किसी प्रकार के तथ्य प्रस्तुत नही किये है . । अपनी अर्न्तदृष्टि का वर्णन करके रहस्यवादी हमे वाह्य जगत् के विषय मे कोई सूचना नही देता, वह हमे अपनी मनोदशा के सम्बन्ध मे ही अप्रत्यक्ष सूचना देता है। उसका यह कहना व्यर्थ है कि उसने तथ्यो का साक्षात् ज्ञान तो प्राप्त किया है किन्तु वह उन्हे अभिव्यक्त करने मे असमर्थ है। क्योकि हम यह जानते है कि यदि उसने वास्तव मे कोई सूचना प्राप्त की होती तो वह उसे अभिव्यक्त करने मे समर्थ होता। यह तथ्य कि वह जो कुछ 'जानता है' उसे वह अभिव्यक्त नही कर सकता अथवा अपने 'ज्ञान' को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए कोई अनुभवनात्मक कसौटी भी प्रस्तुत नही कर सकता इसी बात को स्पष्ट करता है कि उसका रहस्यात्मक अनुभव वास्तव मे सज्ञानात्मक अनुभव नही है''।[1]

रहस्यात्मक ज्ञान के विषय मे एयर के उपर्युक्त विचारो से यह स्पष्ट है कि वे इस ज्ञान की वस्तुनिष्ठता और प्रामाणिकता का पूर्णत निषेध करते है। वे इसे रहस्यवादी का व्यक्तिनिष्ठ अनुभव मात्र मानते है जिसके द्वारा वस्तुपरक रूप से कुछ भी प्रमाणित नही होता। यदि हम ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान के अर्थ मे ग्रहण करे तो एयर का यह मत युक्तिसगत प्रतीत होता है।

[1] ए० जे० एयर 'लैंग्वेज ट्रुथ ऐंड लॉजिक' पृ० 118

जानकारी प्राप्त करनी पडेगी कि धर्म के नाम पर जितने भी नैतिक काम किये गये वे सब धर्म की ही वजह से किये गये, कि अल्प आयु मे धार्गिक शिक्षा देने के प्रभाव अल्प आयु मात्र का परिणाम न होकर धार्मिक होने का परिणाम थे, कि नैतिक जीवन के निर्माण मे धर्म का ही प्रभाव अधिक शक्तिशाली रहा, न कि माता–पिता या लोकमत का प्रभाव–तब भी जब ये धर्म से दूर रहे'।[1] परन्तु ऐसी छानबीन चाहे कितनी ही दिलचस्प क्यो न हो, दर्शन के क्षेत्र मे वह नही आती। यह खोज करना शुद्ध रूप से प्रेक्षण का विषय है कि धार्मिक विश्वास कानून और लोकमत जैसे अन्य सम्भव प्रभावो से अलग ही सदाचार मे उल्लेखनीय वृद्धि तथा कदाचार मे अत्यधिक ह्रास से सहसम्बन्धित रहा है अथवा नही।

3 परन्तु यहाँ अधिक उपयुक्त प्रश्न है– 'उपयोगिता पर आधारित युक्ति क्या सिद्ध करती है?'' हम एक क्षण के लिए यह मान लेते है कि यदि लोग धार्मिक विश्वास रखते है तो वे सदाचारी होते है और यदि वे धार्मिक विश्वास नही रखते तो वे कदाचारी होते है। क्या इससे यह सिद्ध होगा कि ये विश्वास सत्य है? यदि लोग केवल भूतो मे विश्वास करने से सदाचारी बन सके तो क्या इससे भूतो मे विश्वास सत्य हो जायेगा? इसके जबाब के बारे मे कोई सदेह नही लगता। विश्वास इस बात से सत्य या मिथ्या नही होते कि लोग उन्हे मानना चाहते है या उन्हे उनकी आवश्यकता है। सान्टाक्लाज मे विश्वास कर लेने से या

---

1 थ्री एसेज ऑन रिलीजन मे 'दि युटिलिटी ऑफ रिलीजन' के अन्तर्गत जॉन स्टुअर्ट गिल ने इस प्रश्न को लेकर जो चर्चा की है वह प्रसिद्ध है।

सौभाग्य का समय बस आने ही वाला है'' यह मान लेने से ऐसे विश्वास सत्य नही हो जाते, भले ही इससे हमारा उत्साह और उल्लास बढ जाए, ओर किसी अप्रिय तथ्य मे विश्वास करने से इन्कार करने पर उसका तथ्यत्व घट नही जाता। हो सकता है कि यदि एक बात मे विश्वास करने से बहुत ही वाछनीय परिणाम निकलते हो तो, वह चाहे सत्य हो या न हो, हर हालत मे उसे मानने का आपका 'नैतिक अधिकार'' हो, परन्तु इसके बावजूद यह कहना कि एक विश्वास सत्य है तथा यह कहना कि उसे मानकर आपका जीवन सुधर जायेगा, दो अलग–अलग चीजे है। यदि एक विशेष धार्मिक विश्वास का एक अच्छा नैतिक प्रभाव होता है, तो इससे वह सत्य सिद्ध नही हो जाता, और यदि उसका बुरा नैतिक प्रभाव होता है तो इससे वह मिथ्या सिद्ध नही होता, दोनो ही तरह से वह उससे असबद्ध है। ''चाहे कितना ही विवादास्पद यह हो अच्छा होगा यदि लोग इस पर विश्वास कर ले'' यह कहना यह कहने से बिल्कुल भिन्न बात है कि 'यह विश्वास सत्य है'' और दैनिक जीवन मे साधारणत यह बात मानी जायेगी–हम सभी अपने मन के अन्दर अनेक सही पर व्यर्थ की सूचनाऐ जमा करके रखते है, जैसे पुराने टेलीफोन नम्बर। जब किसी विश्वास को व्यापक रूप से सत्य माना जाता है तब साधारणत इस बारे मे कोई सवाल ही नही उठता कि वह उपयोगी भी है या नही, और यह तो निश्चित रूप से नही उठता कि कही उसकी उपयोगिता ही तो उसके सत्य माने जाने का हेतु नही है।

जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा था – धर्म की उपयोगिता के समर्थन मे तर्क देना नास्तिको को ऐसा ढोग करने के लिए प्रेरित करना है जिसके पीछे नीयत नेक है या अर्ध–आस्तिको को उससे अपनी ऑखे फेर लेने के लिए प्रेरित करना है जिससे उनके अस्थिर विश्वास के डिग जाने का खतरा हो, अथवा अत मे सामान्य जनो को कोई सदेह जो उनके मन मे हो प्रकट न करने के लिए प्रेरित करना है, क्योकि मनुष्य जाति के लिए अत्यधिक महत्व रखने वाला एक ढॉचा ऐसी कमजोर बुनियाद पर खडा है कि उसके निकट जाते समय लोगो को इस डर से कि कही वह ढह पडे, अपनी सॉस रोक देनी होगी।[1]

इसी सम्बन्ध मे बर्ट्रेंड रसेल का विचार है–"मै उन लोगो का सम्मान कर सकता हूँ जो कहते है कि धर्म सत्य है और इसलिए उसमे विश्वास करना चाहिए, परन्तु उन लोगो के प्रति मेरे हृदय मे घोर निदा का भाव ही पैदा हो सकता है जो यह कहते है कि धर्म मे इसलिए विश्वास करना चाहिए कि वह उपयोगी है, और कि वह सत्य है भी कि नही, यह पूछना समय बर्बाद करना है"।[2]

वास्तव मे बहुत से लोग इस बात के लिए बहुत प्रयत्नशील रहे है कि नैतिकता को धर्म पर किसी भी रूप मे आश्रित रहने से बचाया जाए। उन्होने महसूस किया है कि जनता के मन मे धर्म और नीति का घनिष्ठ रूप से जुडा रहना, जो कि नैतिकता के बने रहने को धर्म के बने रहने पर निर्भर बना देता है, एक खतरनाक बात है, क्योकि उस दशा मे यदि धार्मिक विश्वास

---

1 थी एसेज ऑन रिलीजन में दि युटिलिटी ऑफ रिलीजन –मिल पृ०–70
2 'ह्वाई आई एम नॉट ए क्रिश्चिअन' (लन्दन, जार्ज आलेन एण्ड आनविन 1957) पृ०–172

कभी समाप्त हो जाए तो नैतिकता भी जो कि उसके उपर निर्भर बना दी गई है उसके साथ ही समाप्त हो सकती है।

चमत्कारों पर आधारित युक्ति

ईश्वर के अस्तित्व के पक्ष मे एक युक्ति जो सदैव सबसे अधिक लोकप्रिय युक्तियो मे से एक रही है चमत्कारो का होना है। युक्ति इस प्रकार है–

मानवीय इतिहास मे विभिन्न समयो मे चमत्कार हुए है (लेकिन इस बात को लेकर बहुत मतभेद रहा है कि कौन सी घटनाए चमत्कारिक है और कौन सी नही है) और किसी चमत्कार की आप इसके अलावा व्याख्या ही क्या दे सकेगे कि ईश्वर ने घटनाओ के प्राकृतिक क्रम मे हस्तक्षेप किया और चमत्कारिक घटना को पैदा किया? अत चमत्कारो का होना ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करता है।

परन्तु चमत्कार होता क्या है? मान लीजिए कि इस क्षण मे एक लोहे की ठोस सलाख पानी मे फेक दी जाती है और वह तैरने लगती है। अनेक लोग इस घटना को देखते है और इसकी फोटो उतार ली जाती है। क्या यह एक चमत्कार है? चमत्कारिक होने के लिए किसी घटना को किस तरह का होना चाहिए?

1 शायद हर आदमी इस बात से सहमत होगा कि चमत्कार को एक असाधारण घटना होना चाहिए। जो बात सदैव होती है या साल मे एक बार भी होती है उसे चमत्कार नही माना जाएगा, बशर्ते इस शब्द का विस्तार करके "ध्वनि का चमत्कार", "नई क्राइस्टल गाडी का चमत्कार"

इत्यादि प्रयोगो को चमत्कार मे शामिल न कर लिया जाय। चमत्कार कोई असाधारण घटना मात्र नही हो सकता। पृथ्वी का एक धूमकेतु मे से गुजरना एक असाधारण घटना होगी, परन्तु जब तक प्रकृति के ज्ञात नियमो के द्वारा इसकी व्याख्या की जा सकती है तब तक इसको चमत्कारिक नही माना जायेगा। शायद एक चीज किसी हवाई जहाज से गिरती है और गिरते–गिरते आपकी खिडकी के बाहर वाले टेलीफोन के तार से टकरा जाती है, उसके टकराने से तार के दो टुकडे हो जाते है और एक टुकडा जमीन की ओर गिरते समय उधर से गुजरने वाली एक बिल्ली से छू जाता है और वह बिजली लगने से मर जाती है। यह निश्चित रूप से एक असाधारण बात है–"यह बात लाखो बातो के होने पर भी दुबारा नही होगी"–परन्तु इसे चमत्कारिक नही माना जाएगा, क्योकि घटना के इस असाधारण क्रम मे होने वाली हर बात की ज्ञात नियमो से व्याख्या की जा सकती है।

2 ऐसा प्रतीत होता है कि कोई घटना तब तक चमात्कारिक नही मानी जाएगी जब तक वह प्रकृति के किसी ज्ञात नियम या किन्ही ज्ञात नियमो के अनुसार होती है। पर इतना क्या काफी है ? मानलीजिए कि एक ऐसी घटना होती है जिसकी व्याख्या प्रकृति के किन्ही भी ज्ञात नियमो के आधार पर नही की जा सकती है। तब क्या वह एक चमत्कार होगी? शायद इससे हमे ऐसा सदेह होने लगे कि प्रकृति के कुछ नियम है जिन्हे हम अभी तक नही जानते अथवा यह कि जिनसे हम पहले से परिचित है उनमे कुछ

ऐसे है जिन्हे सही ढग से सूत्रबद्ध नही किया गया है और जिनमे इस तरह से सशोधन करना जरूरी है कि वह नई घटना उनके क्षेत्र मे आ जाए। जब पहले—पहल यह बात ध्यान मे आई थी कि फोटो प्लेटे निरतर पूर्ण अधकार मे रहने के बावजूद उद्भाषित हो जाती है तब प्रकृति के किसी भी ज्ञात नियम के आधार पर इस बात की व्याख्या नही हो पाई थी, परतु शीघ्र ही लोगो की समझ मे आ गया कि कुछ और नियम भी है जिनकी उन्होने कभी कल्पना नही की थी और जिससे इस विचित्र बात की व्याख्या हो जाती है, और इस तरह रेडियो ऐक्टिविटी के विज्ञान का जन्म हुआ। जब धूमकेतु की पूँछ सूर्य से दूर हटती पाई गई, तब यह नही मान लिया गया कि गुरूत्वाकर्षण के नियम मे भौतिक द्रव्य की जो आकर्षण शक्ति सर्वव्यापी बतायी गई है वह रूक गई है, ऐसे नये नियमो की खोज हुई जिनसे इस तरह की घटनाओ की व्याख्या होती है।

किन परिस्थितियो मे एक घटना को चमात्कारिक माना जाएगा? हम अब यह नही कह सकते कि "जब उस पर कोई ज्ञात नियम लागू न हो"। क्या हम यह कहेगे कि" जब उस पर कोई भी ज्ञात या अज्ञात नियम लागू न हो?" यह ज्यादा सतोषजनक लगेगा। कम से कम पिछले मत के विरूद्ध जो आपत्ति है उरासे यह बच जाता है। निस्सदेह चमत्कार की इस धारणा के अनुसार किसी घटना को चमात्कारिक हम कभी निश्चायक रूप से नही कह सकेगे। हम कभी ऐसा कैसे जान सकते है कि प्रश्नाधीन घटना की

वैज्ञानिक खोज के लाखो वर्ष बाद भी भविष्य मे किसी प्राकृतिक नियम के आधार पर चाहे वह कितना ही जटिल और दुर्जेय क्यो न हो, कदापि व्याख्या नही हो सकेगी? हम नही जान सकते, और इसलिए हम कभी किसी घटना के बारे मे यह नही जान सकते कि वह चमत्कारिक है। यदि लोहे की सलाख तैरने लगे तो हमे अवश्य ही आश्चर्य होगा। परन्तु कौन जानता है कि परिस्थितियो का आखिर वह जटिल समुच्चय ठीक कौन सा है जो भौतिक द्रव्य के उस व्यवहार का जिसे वह करता है, कारण बनता है? प्रकृति ने भूतकाल मे जैसा व्यवहार प्रदर्शित किया उसके आधार पर ही हम यह निर्णय करते है कि क्या प्रसभाव्य है और क्या असभाव्य है? किन्तु प्रकृति की गहराइयो मे अनेक ऐसे सोते हो सकते है जो केवल कभी–कभी ही या बहुत ही विशेष परिस्थितियो मे फूटकर सतह पर आते है। हो सकता है कि लोहे की सलाख का चकित करने वाला व्यवहार हवा की नमी से या रेडियो ऐक्टिविटी के अव तक अज्ञात किसी नियम से या प्रेक्षको की ही मानसिक अवस्था से सम्बन्धित निकल आए। ऐसी बाते अप्रत्याशित इसलिए होगी कि प्रकृति सामान्यत (जहा तक हमारा अब तक का ज्ञान बताता है) जिस तरह काम करती है उससे वे सामजस्य नही रखती, परन्तु यह निश्चित है कि विज्ञान के पिछले इतिहास मे उनकी जैसी बातो का अभाव नही पाया जाएगा। यही जानकारी आश्चर्यजनक रही कि अत्यधिक मात्रा मे रक्स्राव एव मानसिक अवस्था के परिणामस्वरूप हो सकता है न कि किसी शारीरिक कार्यो से, जिसकी कि

उतने जोर–शोर से तलाश की जाती रही, अथवा हाथो का हर समय कॉपते रहना शारीरिक बाल्यावस्था मे जबकि शरीर के अन्तरिक अगो को कोई छति नही पहुॅची थी, किये गये किसी आक्रामक कर्म का, जो कि अब भूला जा चुका है, परिणाम हो सकता है। बहुत से लोग अब भी ऐसी बातो को शक की निगाह से देखते है क्योकि वे ऐसा महसूस करते है कि "प्रकृति उस तरह से काम नही करती"। परन्तु अब तक हमे वैज्ञानिक अनुभव की कठोर पाठशाला मे सीखकर इतनी जानकारी तो हो ही चुकी होनी चाहिए कि प्रकृति अपने तरकस मे थोडे से तीर छिपाए हुए है जिनकी हमे कभी कल्पना तक नही रही, और जो तब तक अवश्य ही विचित्र प्रतीत होते रहेगे जब तक हम उन नियमो के द्वारा जिनसे हम पहले परिचित हो चुके है यह निर्णय करते रहेगे कि "प्रकृति को किस तरह व्यवहार करना चाहिए"।

यहॉ महत्व की बात यह है कि "चमत्कार" की इस परिभाषा के अनुसार हमे इसका कभी पक्का यकीन नही हो सकेगा कि एक घटना, चाहे वह कितनी ही विचित्र, असाधारण या हमारे सामान्य अनुभव के विरूद्ध ही क्यो न हो, चमत्कार थी। हम कभी यह नही जान सकेगे कि वह घटना किन्ही नियमो के अन्तर्गत शामिल नही की जा सकती। फिर भी हम मान लेते है कि ऐसी घटना के बारे मे हमे बिल्कुल पक्का विश्वास हो सकता है कि उस पर कोई भी ज्ञात या अज्ञात नियम लागू नही होता। क्या इससे यह सिद्ध होगा कि उसकी व्याख्या के लिए ईश्वर का सहारा लेना पडेगा? उत्तर लगभग निश्चित लगता है।

यह सिद्ध अवश्य ही नही होगा, केवल यह सिद्ध होगा कि कुछ घटनाओ पर नियम लागू नही होते। परन्तु यह सिद्ध करना तथा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना निश्चित रूप से दो विल्कुल भिन्न बाते है।

4 अन्य लोगो के अनुसार जैसे जॉन स्टुअर्ट मिल के—कोई घटना चाहे कितनी ही विचित्र हो, वह चमत्कार उस दशा मे नही मानी जा सकती जब वह उपाधियो के उसी सुच्चय के दुबारा होने पर दुबारा होने वाली हो। चमत्कार होने के लिए घटना को ऐसी उपाधियो के सुच्चय के अनतर नही होना चाहिए जो उसे दुबारा पैदा करने के लिए पर्याप्त हो। चमत्कार की कसौटी यह है—क्या उपाधियॉ ऐसी मौजूद थी कि जब भी वे दुबारा होगी तब वह घटना भी दुबारा हो जाएगी? यदि ऐसी थी तो घटना चमत्कार नही है। निस्सदेह यहॉ भी हमे इस बात का पक्का विश्वास कदापि नही हो सकेगा कि कोई घटना इस अर्थ मे चमत्कार है—हम पक्की तरह से कभी न जान सकेगे कि यदि उन्ही उपाधियो की आवृति हो तो "चमत्कार" की आवृति नही होगी। अधिक से अधिक हम यही जान सकेगे कि जब हमारी अच्छी से अच्छी जानकारी के अनुसार उपाधियॉ वही थी, तब तथाकथित चमत्कारी घटना नही हुई। परन्तु ऐसी अन्य उपाधियो की आशका सदैव बनी रहेगी जो कभी हमारे ध्यान मे नही आई, पर जो फिर भी, कारणरूप मे सबधित रही होगी, और जिनके आवर्ती उपाधियो मे जोड जिये जाने पर घटना की आवृति हो जाती।

इसके अतिरिक्त, जैसे "चमत्कार" की पिछली परिभाषा को मानने पर वैसे ही यहाँ भी, यदि किसी तरह हम जान भी सके कि हमारे पास सभी सबधित उपाधियाँ है और वे सब वही है पर घटना की आवृति नही हुई, तो भी इससे क्या सिद्ध होगा? केवल अनियतत्ववाद अर्थात् यह कि उपाधियो मे दो अभिन्न समुच्चयो के अनतर भी भिन्न घटनाए हो सकती है। इससे हमे आश्चर्य तो होगा, पर क्या जैसे घटनाओ को पूर्णत नियत मानने पर होता वैसे ही इससे भी व्याख्या के लिए हमे ईश्वर का सहारा लेना पडेगा? आखिर कोई यह भी तो पूछ सकता है कि विश्व को नियत मानने के बजाय अनियत क्यो न माना जाए ?

5 "चमत्कार' शब्द का एक और भी अर्थ है जिसके अनुसार चमत्कार की परिभाषा यह होगी कि वह घटनाओ के प्राकृतिक क्रम मे ईश्वर का हस्तक्षेप करना है। अब अगर यह पूछा जाय कि क्या इस अर्थ गे चमत्कार से ईश्वर का अस्तित्व तार्किक रूप मे अनुलग्न होगा, तो उत्तर अवश्य ही हा मे होगा— ईश्वर का हस्तक्षेप तर्कत तभी हो सकेगा जब हस्तक्षेप करने के लिए ईश्वर का अस्तित्व हो। परतु इसमे कोई सदेह नही है कि इस परिभाषा मे आत्माश्रय दोष है। जब प्रश्न यह हो जाएगा कि "क्या इस अर्थ मे कोई चमत्कार होते है? क्या वस्तुत इस परिभाषा के अनुरूप कुछ होता है? "यदि इस अर्थ मे चमत्कार है तो अवश्य ही ईश्वर का अस्तित्व है, परन्तु ऐसा कहना एक भोडी सी पुनरुक्ति मात्र है। यह केवल यह कहना है कि "यदि ईश्वर हस्तक्षेप करता है तो ईश्वर है।" पर यह कैसे सिद्ध होगा कि ईश्वर हस्तक्षेप करता है? जैसा कि हम

अभी देख चुके है, असाधारण घटनाओ का होना इस बात को सिद्ध नही करेगा।

इस प्रकार चमत्कारो पर आधारित युक्ति के सामने यह उभयत पाश है– यदि चमत्कारो की, अतिम रूप को छोडकर, किसी तरीके से परिभाषा दी जाती है तो उनका होना अधिक से अधिक अनियतवाद को ही सिद्ध कर सकता है, ईश्वर को नही पर यदि चमत्कारो की अतिम रूप मे परिभाषा दी जाती है तो उन्हे पैदा करने के लिए अवश्य ही ईश्वर की जरूरत होगी, लेकिन यह सिद्ध करने का कोई उपाय नही है कि इस परिभाषा के अनुरूप किसी घटना का अस्तित्व है।

असाधारण घटनाओ का अस्तित्व उन्हे चमत्कार सिद्ध नही करेगा? परतु क्या ऐसी घटनाओ का अस्तित्व उनके चमत्कार होने की बात को अत्यधिक विश्वसनीय, अत्यधिक प्रसभाव्य नही बना देगा? दूसरे शब्दो मे क्या इस बात का कोई प्रमाण है कि ऐसी घटनाए होती है जिनका तर्कसगत रूप से अर्थ लगाया जा सके कि घटनाओ के क्रम मे दैवी हस्तक्षेप होता है?

चमत्कारो मे ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप मे घटने वाली घटनाओ मे विश्वास या अविश्वास प्रसगविशेष मे उपलब्ध प्रमाण पर उतना निर्भर नही करता जितना ईश्वर के स्वरूप के बारे मे पहले से हमारे मन मे मौजूद विश्वासो या अविश्वासो पर। हम यह विश्वास करते है कि तथाकथित चमत्कार अधिकतर ऐसे होते है जो ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के साथ मेल नही खाते। यदि ईश्वर यह कहता है कि लोग उसमे विश्वास करे तो वह क्यो एक दूरवर्ती स्थान मे थोडे से चमत्कार करता है जहा थोडे

ही लोग उन्हे देख सके? क्या एक सर्वशक्तिमान सत्ता के लिए आकाश से ऊची आवाजो मे और एक साथ सब लोगो के समझ मे आने वाली सभी भाषाओ मे घोषणाए करना उतना ही आसान नही है? यदि ऐसा हुआ होता तो वर्तमान वर्णनो की अपेक्षा जिनमे अधिकतर लोगो को जनश्रुति पर आधारित रहना पडता है, कही अधिक लोगो को ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास हो गया होता।

यह भी एक रोचक बात है कि लोग किसी भी साधारण घटना को या प्राकृतिक सभावनाओ के विपरीत होने वाली घटना को, जब तक कि वह उनके हित मे काम करती हो, चमत्कार मानने के लिए तैयार बैठे रहते है। एक हवाई दुर्घटना मे सौ आदमी मर जाते है पर एक जीवित बच जाता है। जीवित व्यक्ति और उसके परिवार वाले कहते है– 'यह एक चमत्कार हुआ''। जो मर गये उनके परिवार वालो ने क्या कहा, इसका प्राय उल्लेख नही किया जाता। अब मान लीजिए कि एक हवाई दुर्घटना ऐसी होती है जिसमे एक आदमी मर जाता है और सौ आदमी बचे रहते है। जो मर गया उसके परिवार वाले नही कहते है कि ''यह एक चमत्कार हुआ'' हालाकि सौ का जिवित रहना और एक का मरना, एक के जीवित रहने और सौ के मरने के समान ही है। सामान्य रूप से जो लोग पहले रो ही ईश्वर मे किसी तरह का विश्वास रखते है उनकी किसी भी ऐसी घटना को चमत्कार मानने की प्रवृत्ति रहती है जो असाधारण हो, जिसके कारणो को वे पूरी तरह से न जानते हो, और जो उनके लिए हितकारी हो। जो इस तथ्य पर विचार करेगे वे शायद चमत्कारो पर आधारित युक्ति मे अधिक दिलचस्पी नही लेगे–

इसलिए नही कि उनके पास सबधित घटना की कोई वैकल्पिक व्याख्या है, बल्कि इसलिए कि वे समझते है कि किसे लोग चमत्कार कहते है, यह बात तथ्यो से अधिक इस बात पर निर्भर करती है कि वे क्या विश्वास करना चाहते है। कोई अपने सारे दोस्तो की एकाएक मृत्यु हो जाने को, इसकी प्राकृतिक व्याख्या के कितनी ही कठिन होने के बावजूद चमत्कार नही कहेगा, हालॉकि कोई अपने शत्रुओ की ऐसी मृत्यु को चमत्कार कह सकता है। शत्रु निश्चय ही वर्गीकरण को उलट देगा। इसके अलावा, प्रत्येक धर्म के अपने अलग ही चमत्कार है, एक धर्म, के अनुयायी जिन घटनाओ को चमत्कारो के वर्ग मे रखते है उन्हे दूसरे चमत्कार नही मानते।

अध्याय-पांच

उपसंहार

अध्याय–पांच

उपसंहार

इस शोध प्रबन्ध मे नैतिक एकेश्वरवादी ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार किया गया है जो एक, नित्य, स्वत– अस्तित्ववान, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, वैयक्तिक, प्रेमी एव पवित्र आदि गुणो से युक्त है। इन्ही विशेषताओ से युक्त ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए मैने नैतिक एव धार्मिक अनुभवो पर आधारित युक्तियो का परीक्षण किया है। परम्परागत सैद्धान्तिक प्रमाण इस ईश्वर के अस्तित्व की स्थापना करने मे पूर्णतया सफल नही हैं, परन्तु इस सम्बन्ध मे इन परम्परागत प्रमाणो के महत्व को नकारा नही जा सकता। इन प्रमाणो के द्वारा उस असीम ईश्वर की तरफ एक इशारा अवश्य होता है। काट ने स्वय नैतिक तर्कों को स्वीकार करते हुए भी इन परम्परागत प्रमाणो को विशेष रूप से प्रयोजनमूलक प्रमाण के महत्व को स्वीकार किया है।

ईश्वर के अस्तित्व के लिए काट, एव अन्य दार्शनिको द्वारा प्रस्तुत नैतिकता पर आधारित युक्तियॉ एक सबल आधार है। नैतिक जीवन की पूर्णता के लिए ईश्वर का होना आवश्यक है। हमारे द्वारा किये गये शुभ कर्मों का कोई मूल्य नही होगा, यहॉ तक कि आत्मोत्सर्ग भी व्यर्थ की बाते हो जायेगी, यदि उसका नियन्त्रणकर्त्ता कोई सत्ता न हो। अत एक नैतिक ईश्वर अवश्य है जो हमारे नैतिक कर्मों के आधार रूप मे अस्तित्वान है।

इसी नैतिक एकेश्वरवादी ईश्वर को जानने का प्रयास अनेक धर्मदार्शनिक, विचार, सन्त एव भक्तगण करते हे जिन्हे अनेक धार्मिक अनुभवो के द्वारा ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। चूकि ईश्वर अनन्त है, अत उसकी अनुभूति भी अनन्त रूपो मे होती है। एक ही ईश्वर किसी धर्मदार्शनिक विचारक या सन्त को नैतिक एकेश्वरवादी ईश्वर के रूप मे अनुभूत हो सकता है, जबकि अन्य किसी विचारक या सन्त को सर्वेश्वरवादी ईश्वर के रूप मे अथवा निगुर्ण , निराकार रूप मे अनुभव मे आ सकता है। यहाँ पर नैतिक एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरबाद, सगुण एव निर्गुण का भेद तभी तक रहता है जब तक व्यक्ति को उस परम ब्रह्म परमेश्वर का साक्षात् अनुभव नही प्राप्त हो जाता। प्रत्यक्ष अनुभव के बाद अनुभवकर्ता की दृष्टि मे वह ईश्वर सब कुछ है। चाहे उसे कोई व्यक्तित्वपूर्ण, सगुण, साकार कहे, अथवा व्यक्तित्वरहित, निर्गुण, निराकार कहे कोई अन्तर नही पडता। चूकि परम्परागत प्रमाण एव नैतिक तथा धार्मिक अनुभवो पर आधारित युक्तियो के परीक्षण मे हम केवल नैतिक एकेश्वरवादी ईश्वर की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास करते है, इसलिए अनेक प्रकार की कठिनाइयो का उपस्थित होना स्वाभाविक है, जिनका तार्किक समाधान सम्भव नही होता।

वास्तव मे अनन्त, असीम परमसत्ता ईश्वर तर्क का विषय है ही नही जिसे हम अपनी अल्पबुद्धि से पूर्णतया जान सके। हमारी बुद्धि सीमित है, जो असीमित ईश्वर का सम्यक्तया ज्ञान प्राप्त करने मे असमर्थ है। इस असीम ईश्वर का किञ्चित ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब हमारी बुद्धि अपनी सीमा, सीमितता को तोडकर असीम के साथ जुडने मे समर्थ हो। और यह तभी

सम्भव है जब उस परमतत्व का साक्षात् अनुभव हो। साक्षात् अनुभव हो जाने के बाद यही सीमित बुद्धि असीम हो जाती है जो दिव्य ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ हो जाती है। यहॉ पर चक्रक दोष दिखलाई पडते हुए भी ईश्वर के साथ सगत है, क्योकि वह विरूद्धो का सामन्जस्य है। इसी असीम बुद्धि से दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिसके प्रकाश मे अनन्त असीम परमतत्त्व ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है। हालाकि इन अनुभूतियो के द्वारा परमतत्त्व का जैसा अनुभव होता है उसके अतिरिक्त वह जैसा अभी अनुभव मे नही आया है हो सकता है कभी आये, वह भी उसी परम्तत्त्व का अनुभव होगा। इसलिए ईश्वर का जो भी , जैसा भी और जहॉ भी अनुभव हो वह उसी का है, क्योकि उसके अलावा दूसरा तत्व है ही नही। अनुभव की सच्चाई होने पर ही उसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। केवल पुस्तके पढकर एव भाषण सुनकर ईश्वर के अनुभव का दावा करने वालो को पूर्ण ईश्वर का वास्तविक अनुभव शायद सम्भव न हो। ईश्वर सम्बन्धी अनुभव अपना व्यक्तिगत अनुभव होना चाहिए जैसा कि सन्त कबीर, शकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, महात्मागॉधी, आचार्य श्री स्वामी रामहर्षण दास जैसे अनेक महापुरुषो को प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। कबीर ने कहा था कि–

'दुनिया कहती कागद की लेखी, मैं कहता ऑखिन देखी'

इस परमतत्त्व ईश्वर की अनुभूति को प्राप्त करने हेतु ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग मुख्य रूप से बतलाये गये है, जो अन्तत उसी ईश्वर का अनुभव कराने मे समर्थ है। लेकिन मेरा अपना अनुभव है कि व्यक्ति की विचारधाराऍ भिन्न–भिन्न होती है, अत. जिसे जो मार्ग सुगम लगे, उसी मार्ग का अनुसरण

करना चाहिए। लक्ष्य पर सतत् चिन्तन, मनन एव ध्यान करने से उसका स्वरूप स्वत स्पष्ट हो जाता है। हलॉकि इस पर मनोवैज्ञानिक आक्षेप लगाये जाते है, किन्तु आक्षेप लगाने की बुद्धि उसी तत्व की सकाशता मे है जिसे परमतत्व की प्रत्यक्ष अनुभूति शायद नही प्राप्त हुई है। ईश्वर के अनुभव के लिए सन्त कबीर, महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जैसे अनेक सन्तो ने गुरु महिमा को स्वीकार किया है। गुरु वह है जिसके प्रति व्यक्ति का सहज समर्पण हो जाय। ऐसे गुरु के महत्व को बतलाते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते है कि –

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

दिव्यदृष्टि की प्राप्ति ही ईश्वर का अनुभव है जिसमे अनुभवकर्त्ता स्वय वही हो जाता है–

गोस्वामी तुलसीदास के ही शब्दो मे –

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुमहि तुमहि होइ जाई।।

यह वह स्थिति है जिसमे एक ज्ञानमार्गी को 'अहब्रह्मास्मि' की, एक भक्तिमार्ग के साधक को तत्वमसि' की अनुभूति होती है। इसी अनुभव मे आत्मा एव ब्रहम की एकात्मकता की अद्वैत अनुभूति होती है जिसमे 'अयमात्मा ब्रह्म' एव 'सर्वखलुइद ब्रह्म' की अनुभूति प्राप्त होती है।

फिर भी निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता कि ईश्वर के बारे मे ये अनुभव ही परमसत्य है। उस असीम ईश्वर के बारे मे जितना अनुभव किया जा सका है ऐसा नही है कि

केवल ये अनुभव ही' सत्य है बल्कि यह कहा जा सकता है कि ये अनुभव भी' सत्य हे एव आगे अनन्त ईश्वर हमेशा अनुसन्धान का विषय बना रहने के कारण अन्य कई प्रकार के अनुभव हो सकते है, जिन्हे भी सत्य माना जा सकता है ।

वस्तुत ईश्वर के निश्चित स्वरूप एव अस्तित्व के विषय मे निर्णायक एव सार्वभौमिक वतुनिष्ठ तथ्यो की अनुपलब्धता के बावजूद सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एक ईश्वर मे विश्वास एव अनुभव वह आधार है जिसके द्वारा आज विश्व मे व्याप्त अनेक बुराइयो का रार्थक समाधान सहज ढग से निकाला जा सकता है । वास्तव मे देखा जाय तो आज के विश्व मे विद्यमान हिसा, चोरी, भ्रष्टाचार, आतक, अपहरण, हत्या आदि का मूलकारण हमारी भेददृष्टि है जिसमे हम अपने को श्रेष्ठ एव दूसरो को हेयदृष्टि से देखते है। परम्तत्व या आत्मतत्व के अनुभव के द्वारा, जो स्वरूपत एक ही है सर्वत्र सब रूपो मे अपनी ही चेतना अथवा आत्मा का दर्शन होता है जिससे उपरोक्त बुराइयो का सहज समाधान हो जाता है, क्योकि कोई भी व्यक्ति स्वय अपने साथ बुरा व्यवहार नही करना चाहता। अत मानवमात्र की एकता बनाये रखने मे आध्यात्मिक अनुभवो की उपयोगिता है। इसी प्रकार अशिक्षा, गरीबी, जनसख्या बृद्धि, बेरोजगारी जैसी भयावह समस्याओ के समाधान मे भी ईश्वर का अनुभव अत्यन्त सहायक है। धार्मिक अनुभूति जिसमे ईश्वर का आत्मा के रूप मे अनुभव हो जाता है के धरातल पर व्यक्ति सत्यनिष्ठ, विवेकशील, परोपकारी एव समस्त अच्छाइयो से युक्त हो जाता है। अत ऐसी स्थिति मे उपरोक्त किसी भी समस्या को वह अच्छी तरह से समझ सकता है एव उसका कारगर उपाय ईमानदारी के साथ खोज सकता है, क्योकि उसकी कथनी व करनी मे एकता आ जाती है। इस सभी समस्याओ के समाधान के लिए उपाय तो,

सैद्धान्तिक रूप से आज भी खोजे जा चुके है लेकिन उन पर अमल न किये जाने के कारण समस्याए दिनो दिन बढती जा रही है। अत ईश्वर का ज्ञान अथवा धार्मिक अनुभव वह आधार है जिसके द्वारा व्यक्ति की कथनी व करनी मे, सासारिकता एव आध्यात्मिकता मे, विज्ञान एव धर्म मे सहज ढग से सुन्दर समन्वय स्थापित हो सकता है। जिसकी आवश्यकता पूरे मानव समाज के लिए है।

आज हम प्रदूषण के रूप मे जल, वायु, ध्वनि, परमाणविक आदि प्रदूषणो की समस्याओ से घिरे हुए है, परन्तु इन समस्त प्रदूषणो का मूल कारण हमारे विचारो का प्रदूषण है जिसमे हमारा विचार ही सही नही है। इसलिए सबसे पहले हमे विचारो की शुद्धता पर ध्यान देना होगा, जिसे हम **वैचारिक प्रदूषण** कह सकते है। इस वैचारिक प्रदूषण का निराकरण ईश्वर के ज्ञान एव अनुभूति द्वारा सम्भव है। अत ईश्वर का अनुभव हमारी तत्कालीन विषम समस्याओ के एकमात्र अचूक समाधान के रूप मे है।

सुझाव

आज का विश्व विज्ञान का युग है। हर जगह सरकारी एव गैर सरकारी सस्थाओ द्वारा वैज्ञानिक अनुसन्धान किये जा रहे है, और उनके निष्कर्ष सर्वत्र , समान रूप से मान्य हैं। लेकिन ईश्वर सम्बन्धी अनुभव प्राप्त करने के लिए गैरसरकारी सस्थाए एव आश्रम तो बहुत है जहॉ लोगो का शोषण ही अधिक होता है। अत सरकार द्वारा महाविद्यालयो एव विश्वविद्यालयो मे ऐसी प्रयोगशालाए भी स्थापित की जानी चाहिए जहा से कबीर, विवेकानन्द, गॉधी, टैगोर जैसे विचारक पैदा हो सके। इन प्रयोगशालाओ मे ऐसे आत्मतत्व के अनुभवी एव अनुसन्धान

कर्ताओ की सेवाए ली जा सकती है जिनके अनुभव के आधार पर अनुभूति के परीक्षण की कसौटिया तैयार की जा सकती है। हालॉकि यह प्रयास उस असीम अनन्त महासागर रूप ईश्वर के अनुभव को प्राप्त करने का एक पिपीलिका प्रयास ही होगा जिसको प्राप्त करना पिपीलिका के लिए असम्भव तो है, लेकिन उसमे डूब जाना तो उसके वश मे है ही। और अध्यात्मिक अनुभूति पूर्ण आत्मोत्सर्ग अथवा सर्वसमर्पण का ही परिणाम है। यह समर्पण वह समर्पण है जो किया नही जाता, बल्कि हो जाता है। यही पर सासारिक एव आध्यात्मिक भेददृष्टि के धरातल पर यह कहा जा सकता है कि सासारिक क्रियाएँ की जाती है, जबकि आध्यात्मिक क्रियाएँ होती है। लेकिन अभेददृष्टि मे यह अन्तर नही रह जाता, वहॉ सब ठीक है। सरकारी आध्यात्मिक प्रयोगशालाओ के द्वारा मुझे विश्वास है कि यदि ईमानदारी से कार्य किया जाय तो अच्छे नागरिको का निर्माण सम्भव है। हालाकि महापुरुषो का प्रादुर्भाव किसी निश्चित प्रयास का परिणाम नही होता, बल्कि वे समय की माग पर प्रकट होते रहते है, फिर भी सरकारी आध्यात्मिक प्रयोगशालाओ के महत्व को ईश्वर के अस्तित्व के ज्ञान एव मानवता के हित मे स्वीकार किया जाना चाहिए।

अत यह कहा जा सकता है कि ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए परम्परागत सैद्धान्तिक प्रमाणो की अपेक्षा नैतिक एव धार्मिक अनुभवो का विशेष महत्व है। वास्तव मे ईश्वर का अनुभव तर्क का विषय नही है अपितु आस्था का विषय है, अत इस सम्बन्ध मे धार्मिक अनुभवो का सहगामी बनाना ही हमारा भी अभीष्ट है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. फिलॉसफी ऑफ रीलिजन बाई जॉन हिक प्रेन्टिस–हाल, इन्क्लु, फाउण्डेशन्स ऑफ फिलासफी सीरीज।
2. द बाइबिल–द बाइबिल सोसाइटीज, प्रिन्टेड इन ग्रेट ब्रिटेन ऐट द यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड बाई विविअन राइडर, प्रिन्टर टु द यूनिवर्सिटी।
3. सिस्टेमेटिक थियोलाजी, बाई पॉल तिलिख।
4. ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द फिलासफी ऑफ रीलिजन बाई ब्रेन डेविस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. द आन्टोलाजिकल आरगुमेन्ट एडिटेड बाई एल्विन प्लान्टिग्स।
6. द मेनी फेरूड आरगुमेन्ट एडिटेड बाई जॉनहिक एण्ड आर्थर मैकगिल, मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमि० प्रिन्टेड इन ग्रेट ब्रिटेन बाई लोवे (Lowe) एण्ड ब्रेडोन (प्रिन्टर्स) लिमि० लन्दन।
7. द लॉजिक ऑफ रीलिजिअस बिलीफ बाई के०एन० तिवारी।
8. गाड एण्ड अदर माइन्ड्स बाई एल्विन प्लान्टिग, कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, इथका एण्ड लन्दन।
9. ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु फिलॉसफी एडिटेड, पाल एडवर्डस एण्ड आथर पाप, द फ्री प्रेस, न्यूयार्क, कालेर मैकमिलन लिमिटेड, लन्दन।
10. आरगुमेन्ट्स फार द एक्जिस्टेन्ज ऑफ गाड बाइ जॉन हिक, प्रिन्टेड इन ग्रेट ब्रिटेन बाई राबर्ट मालकोश एण्ड कम्पनी लिमि०, द यूनिवर्सिटी प्रेस ग्लासगो।

11 द रेशनैलिटी ऑफ बिलीफ इन गाड बाई जार्ज–I, प्रेन्टिस–हाल, इन्क्ल्यु०, इन्लीवुड क्लिफ्स न्यु जर्सी प्रिन्टेड'–द यूनाईटेड स्टेट्स आफ अमेरिका।

12 द आन्टोलाजिकल आरगुमेन्ट बाई जोनाथन बार्नेस, मैकमिलन, सैन्ट मार्टिन्स प्रेस।

13 'मेडिटेशन्स' V, ट्रान्स्लेटेड–हाडेन एण्ड रॉस, 'द फिलॉसाफिकल वर्क्स ऑफ डेकार्ट्स I

14 ऐन इन्ट्रेडक्शन टु फिलासफिकल एनालिसिस बाई जॉन हॉस्पर्स, एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

15 क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन बाई काण्ट, ट्रान्स्लेटेड, केम्प स्मिथ।

16 डायलाग्स कान्सर्निंग नेचुरल रिलिजन, बाइ डेविड ह्यूम, ट्रास्ले, नारमॅन केम्प स्मिथ।

17 द एक्जिस्टेन्स ऑफ गाड, एडिटेड बाइ, जॉन हिक, प्राबलम्स ऑफ फिलॉसफी सीरीज, पॉल एडवर्ड्स, जनरल एडिटर।

18 परनेल्स कान्शस इनसाइक्लोपीडिया ऑफ नेचर, परनेल्स एण्ड सन्स लिमिटेड, 1971

19 द फण्डामेण्टल क्वोश्चन्स ऑफ फिलॉसफी बाई एस0सी0इविग रूटलेज एण्ड केगन पाल लिमि० लन्दन।

20 फूटप्रिन्टस ऑफ गाड बाइ आर्थर I, ब्राउन।

21 द एक्जिस्टेन्स ऑफ गाड बाइ वालेस I, मैटसन।

22 क्रिटिश ऑफ प्रैक्टिकल रीजन बाई कान्ट ट्रान्सलेटेड, एल0 डब्लू बेक।

23 गाड एण्ड रीजन एडिटेड, एल० मिलर।

24 फाइव टाइप्स ऑफ एथिकल थियरी' बाइ सी०डी० ब्रॉड रूटलेज एण्ड केगन पाल लिमिटेड।

25 द थिअरी ऑफ गुड एण्ड एविल बाइ हैस्टिग्ज रैशडेल ऑक्सफोर्ड, क्लेरेन्डन प्रेस।

26 ह्यूमन सोसाइटी इन एथिक्स एण्ड पालिटिक्स बाइ बर्ट्रेण्ड रसेल।

27 हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसफी बाइ बर्ट्रेंड रसेल, लन्दन, जार्ज अलेन एण्ड अनविन, लिमि०।

28 द पेरेनिअल फिलॉसफी बाई आल्डस हक्सले, 1950, चैटो एण्ड विन्डस, लन्दन।

29 फेथ एण्ड फिलॉस्फर्स एडिटेड, जॉन हिक।

30 गाड एण्ड एविल बाइ सी०ई०एम० जोड।

31 द प्राब्लेम ऑफ एविल बाइ एम०बी० आहेर्न।

32 गाड एण्ड एविल एडिटेड, नेल्सन पिक इन्लीवुड क्लिफ्स, न्यू जर्सी, प्रेन्टिसन्हाल, 1964।

33 कन्टेम्पोरेरी फिलॉसफी ऑफ रीलिजन एडि०, स्टीवेन एम० कॉन एण्ड डेविड शाज।

34 लॉजिक एण्ड द नेचर ऑफ गाड बाइ स्टीफेन टी, डेविस।

35 इवोल्यूशन बाइ ए० फ्रैकलिन शल, मैग्रा–हिल पब्लिकेशन्स, मैग्रा हिल बुक कम्पनी, इन्क्ल्यू०, न्यूयार्क, टोरोन्टो, लन्दन।

36 द फिलॉसफी ऑफ रीलिजन बाइ एस०पी०कैनाल।

37 द साइन्टिफक आउटलुक बाइ बर्ट्रेण्ड रसेल, जार्ज एलेन एण्ड अनविन लिमि० लन्दन।

38 द साइन्टिफिक एण्ड रीलिजन ऐन इन्ट्रोडक्शन टु कन्टेम्पोरेरी व्यूज, बाइ जी० स्टीफेन्स स्पिक्स, मैथवेन एण्ड कम्पनी लिमि0, 36, एसेन्स स्ट्रीट लन्दन।

39 द फ्यूचर ऑफ ऐन इल्यूशन बाइ सिगमण्ड फ्रायड, ट्रासलेटेड एण्ड एडि0 बाइ जेम्स स्ट्रेची।

40 द कम्पलीट साइकोलाजिकल वर्क्स आफ सिगमन्ड फ्रायड, ट्रासलेटेड एण्ड एडि0, बाई जेम्स स्ट्रेची।

41 साइकालजी एण्ड द रीलिजन्स क्वेस्ट बाइ रेमण्ड बी०, जैकोबी।

42 सी०जे० जुग साइकोलाजिकल रिफलेक्शन्स एडि० जालेण्ड जैकोबी।

43 डरखेम बाइ अन्थनी गिडेन।

44 सोसिओलाजी आफ रीलिजन बाइ ग्लेन एम0 बर्नान, मैग्राहिल बुक कम्पनी इन्क्लु0, 1962, न्यूयार्क, सैन फ्रासिको, टोरन्टो लन्दन।

45 ए सोसिओलाजी आफ रीलिजन बाइ माइकेल हिल, हेनमैन एजुकेशनल बुक्स, लन्दन।

46 सोसिओलाजी ऑफ रीलिजन एडि0 रोलैण्ड राबर्टसन।

47 नीट्शे बाइ रिचर्ड स्काट रोन्टलेज एण्ड—केगन पाल, लन्दन, बोस्टेन, मेलबोर्न एण्ड हेन्ले।

48 द वर्ल्ड्स ऑफ एक्जिस्टेन्शअलिज्म—ए क्रिटिकल रीडर, एडि0, फ्रेडमैन, इन्ट्रोडक्शन बाइ मैनरिक फ्रेडमैन।

49 दस स्पोक जरथुस्त्र बाइ नीट्शे ट्रास्लेटेड, आर०जे० हालिंगडेल, पेन्गुइन बुक्स।

50 नीट्शे ऐज फिलॉसफर बाइ आर्थर सी० डैन्टो द मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, कुलियर–मैकमिलन लिमि०, लन्दन।

51 नीट्से बाइ जे0पी0स्टर्न, फोन्टाना माडर्न मास्टर्स, एडिटर फ्रैंक केरमोड।

52 एक्जिस्टेन्शिअलिज्म बाइ केथलीन रेन।

53 एक्जिस्टेन्शिअलिज्म बाइ पाल फाकी।

54 गाड इन वेस्टर्न थाट बाइ डॉ० जी० श्रीनिवासन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, न्यु डेलही।

55 रीडिंग्स इन ट्वेन्टीथ सेन्चुरी फिलासफी एडि0एफ0पी0 आलस्टन एण्ड जार्ज नैकनिकन।

56 लैंगवेज, ट्रुथ एण्ड लॉजिक बाई ए0जे0एयर, पेलिकान बुक, पेन्गुइन बुक्स।

57 द फिलासफी आफ रीलिजन बाइ बेसिलमिचेल।

58 टोटम एण्ड टैबू बाइ सिगमण्ड फ्रायड।

59 मेटाफिजिकल थिंकिंग बाइ एल्मर स्प्रैग।

60 ऐन इन्क्वायरी इन टु द एक्जिस्टेन्स ऑफ गाड बाइ सन्तोष चन्द्र सेन गुप्ता।

61 द इन्साइक्लोपीडिया आफ फिलासफी, एडि० पाल एडवर्ड्स, मैकमिलन पब्लिशिंग कम्पनी, इन्क्ल्यु०, एण्ड फ्री प्रेस, न्यूयार्क, कुलियर मैकामिलन पब्लिशर्स, लन्दन, वोल्यूम–1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 एण्ड 8।

62 प्राब्लेम्स इन फिलासफी वेस्ट एण्ड ईस्ट एडि0 आर0टी0ब्लैकवुड एन्ड ए०एल० हर्मन, प्रेन्टिस–हाल इन्क, इन्लीवुड क्लियूस, एन०जे० प्रेन्टिस–हाल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लि०, न्यू डेलही।

63 इन्ट्रोडक्शन टु फिलासफी एडि0, अर्थर स्मुलीआन, युनिवर्सिटी आफ वाशिगटन, पाल डीट्रिक्शन युनिवर्सिटी आफ वाशिगटन, डेविड केप्ट, युनिवर्सिटी आफ वाशिगटन, लियोनार्ड मिलर, युनिवर्सिटी आफ वाशिगटन, प्रेन्टिस हाल आफ इन्डिया प्राइवेट लिमिटेड, न्यू डेल्ही, 1967।

64 एक्सप्लोरिंग फिलासफी एडि0 पेटर ए0फ्रेन्च, शेन्कमैन पब्लिशिग क्म्पनी, इन्क, कैम्ब्रिज, मैसाचुएट्स 02138

65 ए हिस्ट्री ऑफ फिलासफी बाइ हारोल्ड हॉफिग।

66 फिलासफी एन्ड कन्टेम्पोरेरी इश्यूस एडि0, जॉन आर0 बर एण्ड मिल्टन गोल्डिगर, द मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क।

67 सोसियोलाजी आफ रीलिजन बाइ जोखिम वाच, लदन, केगन पाल, ट्रेन्च, ट्रबर एण्ड कम्पनी लिमि0, ब्राडवे हाउस, 68–74, कार्टरलेन, ई0सी0 4 ।

68 फिलासफिकल प्राब्लेम्स एण्ड आरगुमेन्ट्स ऐन इन्ट्रोडक्शन बाइ जेम्स डब्लू0 कार्नमैन, कीथ लेहरर, जार्ज एस०पपास।

69 ऐन आउटलाइन ऑफ फिलासफी बाइ बर्ट्रेण्ड रसेल।

70 ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द साइकोलाजी ऑफ रीलिजन बाइ राबर्ट एम0थालेज।

71 रीलिजन एण्ड द साइन्टिफिक आउटलुक बाइ टी0आर0माइल्स।

72 मेन विदाउट गाड्स बाइ हेक्टर हॉटन।

73 द कैटम कासमोलाजिकल आरगुमेन्ट बाइ विलियम लेन क्रेग।

74 एक हिस्ट्री आफ फिलॉसफी वोल्यूम IV, डेकार्ट्स टु लाइबनिट्ज बाइ फ्रेडेरिक कापल्स्टन, लन्दन बर्न्स एण्ड ऑट्स लि०, पब्लिशर्स टु द होली सेक्सन, 1960।

75 ब्रिटिश एनालिटिकल फिलासफी एडि० बर्नार्ड विलियम्स एण्ड एलन मोटीफायर, लन्दन रोन्टलेज एण्ड केगन पाल न्युयार्क द ह्यूमैनटीज प्रेस।

76 ए नीट्से रीडर बाइ सेलेक्टेड एण्ड ट्रान्सलेटेड बाइ आर०जे० हालिगडेल, पेन्गुइन बुक्स।

77 रीलिजन, सोसाइटी एण्ड द इन्डिविजुअल बाइ जे0 मिल्टन यिगर, ।

78 व्हाइ आल ऐम नाट ए क्रिश्चिअन बाइ बर्ट्रेण्ड रसेल, लन्दन, अनविन पेपरबैक, बॉस्टन, सिडनी।

79 आरगेनिक इवोल्यूशन बाइ वीर बाला।

80 आवर एक्सपीरिएन्स ऑफ गाड बाइ एच0डी0लेविस, लदन जार्ज एलेन एण्ड अनविन, न्यूयार्क द मैकमिलन कम्पनी।

81 ऐन एनालिटिकल फिलासफी ऑफ रीलिजन बाई विलियम एफ0 जुरदीग, जार्ज एलेन एण्ड अनविग लिमि0।

82 'लुडविग फेयरबैक, एण्ड द आउटलुक आफ क्लासिकल जर्मन फिलासफी बाइ फेयरबैक एन्जिल्स।

83 द फिलॉसाफिकल वर्क्स आफ डेकार्ट्स–बाइ हाल्डेन एण्ड रॉस।

84 धर्मदर्शन की मूल समस्याएँ – डॉ० वेदप्रकाश वर्मा।

85 दार्शनिक विश्लेषण परिचय', जॉन हास्पर्स अनुवादक गोवर्धन भटट आदि।

86 धर्म दर्शन – डॉ० लक्ष्मी निधि शर्मा

87 सामान्य – धर्मदर्शन – डॉ० याकूब मसीह

88 धर्मदर्शन – डॉ० बी०एन० सिह

89 द गाड आफ द फिलास्फर्स अन्थनी केनी, क्लेरेन्डन प्रेस, आक्सफोर्ड, 1979।

90 सामान्य धर्मदर्शन एव दार्शनिक विश्लेषण, डॉ० या० मसीह।

91 गाड, रीजन एण्ड थेस्टिक प्रूफ', बाइ स्टीफेन टी० डेविस एडिनवर्ग, यूनिवर्सिटी प्रेस।

92 द माइरेकल ऑफ थीज्म, आरगुमेन्ट्स फार एण्ड अगेस्ट द एक्जिस्टेन्स ऑफ गाड, जे०एल० मैकी, क्लैरेन्डन प्रेस, आक्सफोर्ड 1982।

93 समकालीन धर्मदर्शन–डॉ० याकूब मसीह, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

पत्र–पत्रिकाएं

1 फिलासफिकल टापिक्स–वोल्यूम 13, नवम्बर, 3 फाल 1985।

2 इन्टरनेशनल फिलासाफिकल क्वार्टरली–वोल्यूम XXV नवम्बर 4, इश्यू न० 100, दिसम्बर 1985।

3 इन्टरनेशनल जर्नल फार फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम 18, नवम्बर–1–2, 1985।

4 इडियन फिलासफिकल क्वार्टरली–वोल्यूम XII, नवम्बर 2, अप्रिल–जून 1985।

5 इन्टरनेशनल जर्नल फार फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम 17, नवम्बर–1–2, 1985।

6 फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम X, नवम्बर 4, 1979।

7 फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम III, नवम्बर 3, फाल 1972।

8 इन्टरनेशनल जर्नल फार फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम 15, नम्बर 1–2, 1984।

9 फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम 14, नवम्बर, 1, 1982।

10 फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम 13, नवम्बर 1, 1982।

11 फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम 11, नवम्बर, 2 समर 1980।

12 फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम XI, नवम्बर 1, स्प्रिग1980।

13 फिलासफी ऑफ रीलिजन–वोल्यूम VI, नवम्बर 1, स्प्रिग 1975।

14 फिलासफी ऑफ रीलिजन—वोल्यूम III, नवम्बर1 स्प्रिग 1972।

15 फिलासफी ऑफ रीलिजन—वोल्यूम II नवम्बर 4, विन्टर 1971।

16 फिलासाफिकल क्वार्टरली—वोल्यूम X, 1960।

17 माइन्ड, वोल्यूम LXIV, 1955।

18 माइन्ड, जुलाई, 1962।

19 माइन्ड, 1931।